कृषि विभाग
बिहार सरकार

औषधीय पौधों की वैज्ञानिक खेती

राज्य बागवानी मिशन

"दूसरी हरित क्रांति बिहार से आयेगी।
परन्तु यह जरूरी नहीं की तरीके वही पुराने हों,
जो प्रथम हरित क्रांति के थें"

श्री नीतीश कुमार, मुख्यमंत्री, बिहार

नरेन्द्र सिंह
Narendra Singh

कृषि विभाग
बिहार सरकार

मंत्री
कृषि विभाग,
बिहार सरकार, पटना
Minister
Deptt. of Agriculture
Govt. of Bihar, Patna
Office : 2nd Floor, Vikash Bhawan
Bailey Road, Patna (Bihar)
Ph.: 0612 - 2231212 (O)
Fax : 0612 - 2215526 (O)
Mob.: 94318 21904, 9431818702

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि राज्य बागवानी मिशन ''औषधीय पौधों की वैज्ञानिक खेती'' की पुस्तिका का प्रकाशन कर रहा है। वर्ष 2012 को औद्यानिक वर्ष के रूप में मनाने में किसान भाईयों के लिए यह पुस्तक काफी ज्ञानवर्द्धक होगा।

किसान भाई अपनी भूमि की स्थिति के अनुरूप औषधीय फसल लगाकर बेकार, बंजर, कृषि के अनुपयुक्त एवं समस्याग्रत भूमि से भी अच्छी आमदनी प्राप्त करेंगे तथा राज्य को खुशहाल बनायेंगे।

(नरेन्द्र सिंह)
12.5.2012

अशोक कुमार सिन्हा
भा.प्र.से.
कृषि उत्पादन आयुक्त

कृषि विभाग
बिहार सरकार

बिहार सरकार
कृषि विभाग
विकास भवन, पटना–800015
का. : 0612–2215720
आ. : 0612–2938039
फै. : 0612–2217365
मो. : +91–9431815515

संदेश

कृषि रोड मैप में किसानों की आमदनी बढ़ाने वाले फसलों तथा तकनीकों को बढ़ावा देने का कार्यक्रम शामिल किया गया है। औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती को अपनाकर किसान अपनी आमदनी को बढ़ा सकते हैं। इन पौधों की खेती अपेक्षाकृत कम उपजाऊ जमीन पर भी की जा सकती है। ये पौधें मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

राज्य सरकार औषधीय एवं सुगंधित पौधे की खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को इन फसलों की खेती के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर रही है। खेती के साथ–साथ प्रस्संस्करण के लिए भी अनुदान का प्रावधान किया गया है। विशेष उद्यान फसल कार्यक्रम के तहत पश्चिम चंपारण, मुंगेर, सिवान तथा जहानाबाद में औषधीय एवं सुगंधित पौधे के बड़े कलस्टर के रूप में विकसित किया जा रहा है।

हाल के वर्षों में इन फसलों की खेती व्यापक पैमाने पर शुरू की गयी है। सुगंधित एवं औषधीय पौधों की खेती की तकनीकी जानकारी काफी महत्वपूर्ण है। किसानों के लिए प्रमाणिक प्रशिक्षण सामग्री की आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

औषधीय पौधों की वैज्ञानिक खेती का तकनीकी आलेख किसानों तथा कृषि विभाग के कर्मियों के लिए अत्यंत सामयिक है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तिका से अधिक से अधिक लोग लाभान्वित होंगे।

(अशोक कुमार सिन्हा)

डॉ. एन. विजयलक्ष्मी, भा.प्र.से.
सचिव, कृषि–सह–मिशन निदेशक
राष्ट्रीय औषधीय पादप मिशन
बिहार, पटना

कृषि विभाग
बिहार सरकार

कृषि विभाग
बिहार सरकार
विकास भवन
पटना–800015

प्रस्तावना

औषधीय फसलें अन्य फसलों की तुलना में बेकार, बंजर, कृषि के अनुपयुक्त भूमि, समस्याग्रस्त भूमि में तथा विपरीत मौसम में भी किसानों के लिए लाभदायक हैं। ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार एवं अधिक आय के अवसर औषधीय खेती से प्राप्त हो रही है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के हमारे किसान भाई फरवरी–मार्च में एवं बाढ़ आने के पूर्व मेन्था की फसल से कई गुणा ज्यादा आय अर्जित कर रहे हैं। तुलसी की खेती से दो मुख्य फसलों के बीच 70–80 दिनों में काफी अच्छी आय किसानों द्वारा ली जा रही है। इस तरह औषधीय फसलों से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो रही है।

सुगंधित पौधों से सारभूत तेल निकालने हेतु गाँवों में सैकड़ों आसवन संयंत्र राज्य सरकार की मदद से लग रहे हैं, जिससे ग्रामीण युवाओं की आय में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। आशा करती हूँ कि राज्य बागवानी मिशन द्वारा प्रकाशित ''औषधीय पौधों की वैज्ञानिक खेती'' से हमारे किसान एवं ग्रामीण युवा अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर अतिरिक्त आय के श्रोत सृजित करेंगे।

(डॉ. एन. विजयलक्ष्मी)

औषधीय पौधों
की वैज्ञानिक खेती

विषय सूची

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1	घृतकुमारी	01
2	बच की खेती	06
3	गुग्गल	11
4	कालमेध	17
5	कोलियस फोर्सखोली	21
6	मेन्था	29
7	पिप्पली	37
8	सतावर	48
9	सर्पगंधा	55
10	स्टीविया	60
11	तुलसी	65
12	खस	69

घृतकुमारी *(Aloe vera)*

सामान्य वर्णन

यह लिलीएसी कुल का बहुवर्षीय मांसल पौधा है जिसकी ऊंचाई 2–3 फीट तक होती है। इसका तना बहुत छोटा तथा जड़े भी झकड़ा होती है। जो कि जमीन के अन्दर कुछ ही गहराई तक रहती है। मूल के ऊपर से काण्ड से पत्ते निकलते है। पत्ते मांसल, फलदार, हरे तथा एक से डेढ़ फुट तक लम्बे होते है। पत्तों की चौड़ाई 1से 3 ईंच तक मोटाई आधी इंच तक होती है। पत्तों के अन्दर घृत के समान चमकदार गुदा होती है। जिसमें कुछ हल्की गंध आती है तथा स्वाद में कड़वा होता है। पत्तों को काटने पर एक पीले रंग का द्रव्य निकलता है जो ठण्डा होने पर जम जाता है जिसे "कुमारी सार" कहते है। आयुर्वेद में इसे घृतकुमारी के नाम से पहचानते है। ग्वारपाठा मुख्यतः फलोरिडा, वेस्टइंडीज, मध्य अमेरिका तथा एशिया महाद्वीप में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। भारत में पूर्व में विदेशों से लाया गया था लेकिन अब पूरे देश में खास कर शुष्क इलाको में जंगली पौधों के रूप में मिलता है। भारत में इसकी खेती राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा हरियाणा के शुष्क इलाकों में की जाती है।

उपयोग

आयुर्वेद के मतानुसार ग्वारपाठा कडुवा, शीतल, रेचक, धातु परिवर्तक, मज्जावर्धक, कामोद्दीपक, कृमिनाशक और विषनाशक होता है। नेत्र रोग, अवूर्द, तिल्ली की वृद्धि, यकृत रोग, वमन, ज्वर, खासी, विसर्ग, चर्म रोग, पित्त, श्वास, कुष्ठ पीलियां, पथरी और व्रण में लाभदायक होता है। आयुर्वेद की प्रमुख दवायें जैसे घृतकारी अचार, कुमारी आसव, कुवारी पाक, चातुवर्गभस्म, मंजी स्याडी तेल आदि इसके मुख्य उत्पाद है। प्रसाधन सामग्री के निर्माण में भी उपयोग मुख्य प्रमुख रूप में किया जाता है। त्वचा में नयापन लाने के लिए इसके उत्पादों का उपयोग पौराणिक काल से ही हो रहा है। उत्पादों का विश्व बाजार में काफी माँग के चलते ग्वारमाठा के खेती की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

जलवायु

ग्वारपाठे को मुख्यतः गर्म आर्द्र से शुष्क व उष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है।

भूमि

हालांकि घृतकुमारी की खेती असिंचित तथा सिंचित दोनों प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु इसकी खेती हमेशा ऊँची भूमि पर करनी चाहिये। खेत की गहरी अच्छी जुताई होना चाहिए।

भूमि तैयारी व खाद

वर्षा ऋतु से पहले खेत में एक दो जुताई 20–30 से०मी० की गहराई तक पर्याप्त है जुताई के समय 10–15 टन गोबर की खाद एकसार भूमि में अंतिम जुताई के साथ मिला देनी चाहिये।

बुवाई का समय

इसकी बिजाई सिंचित क्षेत्रों में सर्दी को छोड़कर पूरे वर्ष में की जा सकती है लेकिन उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त है।

बीज की मात्रा

इसकी बिजाई 6''–8'' के पौध द्वारा किया जाना चाहिए। इसकी बिजाई 3–4 महीने पुराने चार–पांच पत्तों वाले कंदो के द्वारा की जाती है। एक एकड़ भूमि के लिए करीब 5000 से 10000 कदों/सकर्स की जरूरत होती है। पौध की संख्या भूमि की उर्वरता तथा पौध से पौध की दूरी एवं कतार से कतार की दूरी पर निर्भर करता है।

बीज प्राप्ति स्थान

एलोईन तथा जेल उत्पादन की दृष्टि से नेशनल ब्यूरो ऑफ प्लान्ट जेनेटिक सोर्सेस द्वारा घृत कुमारी की कई किस्में विकसित की गयी है। सीमैप, लखनऊ ने भी उन्नत प्रजाति (अंकचा/ए०एल०–1) विकसित की है। वाणिज्यिक खेती के लिए जिन किसानों ने पूर्व में ग्वारपाठा की खेती की हो तथा जूस/जेल आदि का उत्पादन में पत्तियों का व्यवहार कर रहे हों, सम्पर्क करना चाहिए।

रोपण विधि

इसके रोपण के लिए खेत में खूड़ (रिजेज एण्ड फरोज) बनाये जाते है। एक मीटर में इसकी दो लाईने लगेगी तथा फिर एक मीटर जगह खाली छोड़ कर पुनः एक मीटर में दो लाईने लगेंगी। यह एक मीटर की दूरी ग्वारपाठे काटने, निकाई गुड़ाई करने में सुविधाजनक रहता है। पुराने पौधे के पास से छोटे पौधे निकालने के बाद पौधे के चारो तरफ जमीन की अच्छी तरह दबा देना चाहिये। खेत में पुराने पौधों से वर्षा ऋतु में कुछ छोटे पौधे निकलने लगते है इनकों जड़ सहित निकालकर खेत में पौधारोपण के लिये काम में लिया जा सकता है। नये फल बाग में अन्तरवर्त्ती फसल के लिए ग्वारपाठा की खेती उपयुक्त है।

सिंचाई

बिजाई के तुरंत बाद एक सिंचाई करनी चाहिये बाद में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिये। समय–समय पर सिंचाई से पत्तों में जेल की मात्रा बढ़ती है।

निकाई/गुड़ाई

फसल बिजाई के एक मास बाद पहली निकाई गुड़ाई करनी चाहिए। 2–3 गुड़ाई प्रति वर्ष बाद में करनी चाहिये तथा समय–समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिये।

फसल की कटाई

मुख्यतः इस फसल पर किसी तरह के कीटों एवं बीमारी का प्रकोप नही पाया गया है। कभी कभी दीमक का प्रकोप हो जाता है।

पौध लगाने के एक वर्ष बाद में परिपक्व होने के बाद निचली तीन पत्तियों को तेज धारदार हांसिये से काट लिया जाता है। पत्ता काटने की यह क्रिया प्रत्येक तीन–चार महीने पर किया जाता है।

उपज

प्रति वर्ष एक एकड़ से घृतकुमारी 20000 कि०ग्रा० प्राप्त किये जा सकते है।

बाजार भाव व बिक्री

ताजा पत्ती का वर्तमान भाव बाजार में 2–5 रू प्रति कि० ग्रा० है। इन पत्तों को ताजा अवस्था में आयुर्वेदिक दवाईयां बनाने वाली कंपनिया तथा प्रसाधन सामग्री निर्माताओं को बेचा जा सकता है। इन पत्तों से मुसब्बर अथवा एलोवासर बनाकर भी बेचा जा सकता है।

ग्वारपाठा की खेती से विशेष :

1. बेकार पड़ी भूमि व असिंचित भूमि में बिना किसी विशेष खर्च के इसकी खेती कर लाभ कमाया जा सकता है।
2. इसकी खेती के लिये खाद, कीटनाशक व सिंचाई की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं होती है।
3. कोई जानवर इसको नही खाता। अतः इसकी रखवाली की विशेष आवश्यकता नही होती। जानवर इसे खाते नहीं किंतु कुचलने से खर बर्बाद हो सकते हैं।
4. यह फसल हर वर्ष पर्याप्त आमदनी देती है।
5. इस खेती पर आधारित एलुवा बनाने, जैल बनाने व सूखा पाउडर बनाने वाले उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। इस तरह इसके सूखे पाउडर व जैल की विश्व बाजार में व्यापक मांग होने के कारण विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।
6. राज्य में ग्वारपाठा के प्रसंस्करण की व्यवस्था का प्रयास हो रहा है, इससे किसानों को अच्छी आय मिल सकेगी।

आय

एक वर्ष बाद प्रति एकड़ एक लाख रूपये तक आय हो सकती है।

ग्वारपाठा की खेती पर प्रति एकड़ होने वाले आय–व्यय का विवरण :

क.	खेती पर होने वाला व्यय					
	व्यय की मदें	**प्रथम वर्ष**	**द्वितीय वर्ष**	**तृतीय वर्ष**	**चतुर्थ वर्ष**	**पंचम वर्ष**
1.	खेत की तैयारी पर व्यय	2000	.	.	.	.
2.	खाद की लागत	1500	1500	1500	1500	1500
3.	बीज की लागत (3/– प्रति पौधा)	15000	.	.	.	.
4.	बिजाई पर व्यय	1000	.	.	.	.
5.	निकाई गुड़ाई पर व्यय	2000	1500	1500	1500	1500
6.	सिंचाई पर व्यय	2000	2000	2000	2000	2000
7.	फसल सुरक्षा तथा टॉनिकों आदि पर व्यय	1000	1000	1000	1000	1000
8.	कटाई पर व्यय	1000	1000	1000	1000	
9.	ढुलाई तथा परिवहन पर व्यय	10000	10000	10000	10000	10000
	कुल योग	**21500**	**17000**	**17000**	**17000**	**17000**
ख.	**प्राप्तियां**					
1.	पत्तों की बिक्री से आय (30 टन पत्तों की 3 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से)	.	90000	90000	90000	90000
2.	सकर्स की बिक्री से आय	10000	10000	10000	10000	10000
कुल योग		**10000**	**100000**	**100000**	**100000**	**100000**
ग.	**शुद्ध लाभ**	**11500**	**83000**	**83000**	**83000**	**83000**

बच की खेती *(Araceae calamus)*

बच एरेसी (Araceae) कुल का एक पौधा है जिसका वानस्पतिक नाम ''एकोरस केलमस'' है। संस्कृत में इसका नाम बच बोलना, शदग्रंथा–छः गांठों वाला, उग्रगंधा, तीखी वैखण्ड, बसुन्बा चिरपिति सुगंध है। इसका तना (राइजोम) बहुशाखित व भूमिगत होता है। पत्तियां रेखाकार से भालाकार, नुकीली मोटी मध्य शिरा युक्त होती हैं। इसका पुष्पक्रम 4.8 से.मी. का स्पेडिक्स होता है। इसके फूल हरापन लिए पीले होते हैं तथा इसके फल लाल तथा गोल होते हैं।

बच का पौधा संपूर्ण भारत वर्ष में मुख्य रूप से हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रदेशों में पाया जाता है। मध्यप्रदेश में विंध्य पठारी प्रदेश, नर्मदा, सोन घाटी, सतपुड़ा मेकल प्रदेश आदि में यह बहुतायत में पाया जाता है। नदी–नालों के किनारे तथा दलदली एवं गीली जगह इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त होती है।

उपयोग

बच के राइजोम का तेल ग्रेस्ट्रिक, श्वास रोगों में, बदहजमी, दस्त, मूत्र एवं गर्भ रोगों में, हिस्टीरिया एवं खांसी इत्यादि रोगों में प्रयुक्त होता है। बच के राइजोम से बनाई जाने वाली प्रमुख औषधियां इस लेख के अंत में सारणी क्र.1 में दिर्शायी गई है।

जलवायु :

जिन क्षेत्रों का तापमान 10° से 38° सेल्सियस तथा जहां वार्षिक वर्षा 70 से.मी. से 250 से.मी. तक होती हो, वे बच की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं।

मिट्टी :

बच की खेती के लिए बालूई दोमट मिट्टी, जहां सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था हो अथवा जहां पानी खड़ा रहता हो अधिक उपयुक्त होती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था न हो, वहां बच की

खेती नहीं करनी चाहिए।

भूमि की तैयारी :

बच की खेती के लिए वर्षा से पहले भूमि की दो–तीन बार अच्छी तरह जुताई कर लेनी चाहिए। रोपाई से पहले भूमि की तैयारी धान की तैयारी की तरह की जानी चाहिए। भूमि को थोड़ी दलदली बनाया जाए तो ज्यादा उपयुक्त होगा।

बच की बिजाई अथवा संवर्धन :

बच की खेती के लिए इसके राइजोम को लगाया जाता है। इसके लिए प्लांटिंग मेटेरियल प्राप्त करने हेतु इसके पुराने राइजोम को ऐसी मिट्टी में जहां लगातार नमी बनी रहती हो, दबाकर रखा जाता है। इनमें नये अंकुरण होने पर इन राइजोम को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर इनका रोपण किया जाता है।

रोपाई :

काटे गए राइजोम के टुकड़ों को तैयार की गई भूमि में 30X30 से.मी. के अंतराल पर मिट्टी के लगभग 4 से.मी. अंदर बरसात शुरू होने से पहले अथवा बरसात शुरू होते ही जून माह में लगाया जाता है। इस प्रकार प्रति हेक्टेयर लगभग 1,11,000 पौधे लगाये जाते है। यदि भूमि गीली अथवा दलदली न हो तो रोपाई के तुरन्त बाद आवश्यक रूप से पानी देना चाहिए। बच की वृद्धि दर बहुत अच्छी होती है तथा दूसरे दिन से ही पौधों में वृद्धि दिखाई पड़ने लगती है।

खाद :

अच्छी फसल के लिए लगभग 15 ट्राली गोबर खाद अथवा कम्पोस्ट खाद प्रति हैक्टेयर की दर से रोपाई से पहले भूमि में मिला देनी चाहिए।

सिंचाई :

बच की कृषि तकनीकि का सबसे महत्वपूर्ण पहलू इसके लिए पानी की अत्याधिक आवश्यकता है। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। बाकी दिनों में 2–3 दिन के अंतराल में सिंचाई होना वांछित होता है। विशेष रूप से नदी–नालों के किनारे की जमीनें जहां हमेशा दलदल रहता हो या

जहां पानी भरा रहता हो तथा जहां कोई अन्य खेती न ली जा सकती हो, वहां इसकी खेती बहुत अधिक लाभदायक होती है।

निकाई–गुड़ाई :

बच की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खरपतवार पर नियंत्रण तथा जमीन के वायु विनमय के लिए समय–समय पर निकाई एवं गुड़ाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए।

राइजोम का निकालना :

8–9 माह की खेती के बाद मार्च–अप्रैल माह में जब बच के पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगती है व सूखने लगती हैं तब इसके पौधे को जड़ समेत जमीन से खोदकर निकाल लेना चाहिए। यदि खेती बड़े स्तर पर की जा रही हो तो हल चलाकर भी राइजोम निकाले जा सकते हैं। पत्तियों को राइजोम से काटकर अलग कर लिया जाना चाहिए।

सुखाना :

निकाले गए राइजोम को पानी में धोए बिना साफ करके छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर छायादार जगह में फैलाकर सुखाया जाता है। (जिससे इसमें उपस्थित तेल की मात्रा का ह्रास न हो) तथा तद्नुसार बोरों में भरकर विक्रय हेतु भिजवाया जा सकता है।

सारांश रूप में

1. वानस्पतिक नाम : एकोरस केलमस.
2. उपयोग : पेट विकारों, मूत्र रोगों, गर्भरोगों, खांसी, हिस्टीरिया, मानसिक तनाव, ट्रक्यूलाइजर, लिवर की बीमारियों से संबंधित दवाएं बनाने हेतु प्रयुक्त।
3. उपयुक्त जलवायु : 10 से 38 डिग्री सेल्सियस तक तापमान, दलदली भूमि, पानी की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता।
4. मिट्टी : बलुई दोमट मिट्टी, सिंचाई की व्यवस्था सहित।
5. बिजाई की विधि : राइजोम द्वारा
6. प्रयुक्त किया जाने वाला भाग : राइजोम
7. बिजाई हेतु उपयुक्त समय : जून माह

8. फसल की अवधि : लगभग 9 माह
9. उपज : 40–41 क्विंटल सूखी राइजोम प्रति हेक्टेयर।
10. लाभप्रदता : लगभग 1,00,000 रू0 प्रति हेक्टेयर

विभिन्न भाषाओं में बच के नाम

Botanical	:	Acorus, Calamus
English	:	Sweet Flag
bengali	:	Bach
Gujrati	:	Bekhand
Konkani	:	Ekhanda
Malayalam	:	Vasambu
Marathi	:	Vekhand
Punjabi	:	Bariboj
Tamil	:	Vasambu
Sanskrit	:	Vasa

बच की खेती से संबंधित होने वाले आय–व्यय का ब्यौरा (प्रति एकड़)

क. कुल व्यय अथवा लागत

1.	भूमि की तैयारी पर व्यय	– 2,000.00
2.	रोपण सामग्री पर व्यय (45000 राइज़ोम (टुकड़े) 40 पैसा प्रति राइज़ोम की दर से)	– 18,000.00
3.	खाद पर व्यय (6 टन गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद 250 रू0 प्रति टन की दर से)	– 15,00.00
4.	कीटनाशकों आदि पर व्यय	– 500.00
5.	रोपण, निकाई–गुड़ाई तथा पौधा संरक्षण पर व्यय (30 मजदूर दिवस)	– 1,500.00
6.	फसल उखाड़ने तथा उपज की साफ–सफाई, पैकिंग तथा ढुलवाई आदि पर व्यय	– 2,500.00
	योग	– **26,000.00**

ख. खेती से प्राप्तियां

1.	16 क्विंटल सूखी बच (2500 रू0 प्रति क्विंटल की दर से)	–	40000.00
2.	प्लांटिंग मेटेरियल के रूप में प्राप्तियां	–	25000.00
	योग	–	**65,000.00**
ग. लाभ (प्रति एकड़)		–	**40,000.00**

प्रसंस्कृत उत्पाद

उड़नशील तेल (Volatile Oil)

बच के सूखे राईजोम को वाष्प आसवन करने से 1.5–3.5 प्रतिशत तक उड़नशील सुगंधित तेल निकाला जाता है। हल्के पीला रंग के इस तेल की सुगंध कुछ पचौली के तेल के सदृश्य है। वाष्प आसवन के पूर्व सूखे राईजोम को छोटे–छोटे टुकड़ों में डिस्इन्टीगेटर द्वारा किया जाता है जिससे सुगंधित तेल का उत्पादन ज्यादा लगभग 4.6 प्रतिशत तक हो जाता है। आसवन में समय ज्यादा लगभग 12–14 घंटा लगता है।

बच के सुगंधित तेल की कीमत 2005 में 1300–1400/किलोग्राम था जो 2009–10 में 2300–2500/किलोग्राम हुआ। वैश्विक बाजार में बच के तेल की कीमत वर्त्तमान दर लगभग 6600/– किलोग्राम है। राज्य में आगामी खरीफ में बच की खेती अच्छी आय देने वाला फसल हो सकता है।

गुग्गल *(Commiphora wightis)*

औषधीय एवं सुगंधीय पौधे मानव सभ्यता से जुड़े रहे हैं और भविष्य के लिए मूल्यवान धरोहर हैं। अनेक कारणों से इन पौधों को वर्तमान में उपयोग करते हुए भविष्य के लिए सुरक्षित रखना भी अत्यंत आवश्यक है। भारत के रेड डाटा बुक में 427 संकटग्रस्त पौधों के नाम दर्ज हैं, इनमें से 28 लुप्त, 124 संकटग्रस्त, 81 नाजुक दशा में, 100 दुर्लभ तथा ऐसे अन्य पौधे हैं, जैसे अंग्रेजी में इंडियन बेडलियम, संस्कृत में गुग्गल, क्वासीकाहा, महिवाक्ष और देवधूप फारसी में बुइजाहुदनं तथा यूनानी में अफलातेना। भारत में गुग्गल प्राकृतिक रूप से ज्यादातर शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। यहां इसकी कई प्रजातियां उपलब्ध है। मुख्य रूप से कॉमीफोरा विग्टी और सी स्टॉकसियाना राजस्थान एवं गुजरात के शुष्क क्षेत्रों में पाये जाते है तथा सी. बेरयी, सी. एगेलोचा. सी. मिर्रा. सी. कॉडेटा और सी. जमेरमानी नामक प्रजातियों के वितरण का प्रमाण भारत के अन्य राज्यों में भी मिलता है। इसका उद्‌गम स्थल अफ्रीका तथा एशिया माना जाता है। यह अफ्रीका के सोमालिया, केनिया, उत्तर–पूर्व इथियोपिया, जिम्बाबवे, बोत्सवाना एवं दक्षिण अफ्रीका तथा एशिया में पाकिस्तान के सिंध एवं बलूचिस्तान में, भारत के गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं कर्नाटक में भी पाया जाता है।

वानस्पतिक विवरण

गुग्गल का वानस्पतिक नाम कॉमीफोरा विग्टी है तथा यह बरसरेसी परिवार का एक सदस्य है। यह एक से तीन मीटर उंचा, झाड़ीनुमा पौधा है जिसकी शाखाएं कंटीली होती है। इसके तने से राख रंग के बाहरी छाल से खुरदरी पपड़ियां निकलती हैं तथा फूल भूरे लाल रंग और फल मांसल लंबगोल (ड्रूप) होते हैं जो पकने पर लाल हो जाते हैं। सामान्यतः इसका गुणसूत्र 2n=26 होता है।

औषधीय गुण

गुग्गल एक बहुउपयोगी पौधा है, जिससे निकलने वाले गोंद का इस्तेमाल एलोपैथी, यूनानी तथा आयुर्वेदिक दवाओं में किया जाता है। इसके गोंद के रासायनिक तथा क्रियाकारक तत्व, संधिवात,

मोटापा दूर करने, तांत्रिकीय असंतुलन, रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा एवं कुछ अन्य व्याधियों के उपचार में अत्यधिक प्रभावकारी पाये गये हैं। गुग्गल के लोबान का धुआं क्षय रोग में भी हितकारी पाया गया है। विश्लेषणों से पता चला है कि इनमें स्टेरॉयड वर्ग के दो महत्वपूर्ण यौगिक, जेड–गुग्गलस्टेरोन तथा ई–गुग्गलस्टेरोन पाये जाते हैं।

इसके अतुलनीय औषधीय गुणों को ध्यान में रखते हुए अनेक दवा निर्यातक कंपनियों ने गुग्गल गोंद का उपयोग कई व्याधियों के उपचार हेतु किया हैं। विश्व बाजार में इसकी तेजी से बढ़ती हुई मांग के कारण भारतीय जंगलों से भी इस पौधें का सफाया होता जा रहा है। इस बहुमूल्य पौधे के अत्यधिक दोहन के कारण विगत वर्षो में इसका प्राकृतिक ह्रास तेजी से हुआ है। इसी विनाश की वजह से इसे भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण ने विलुप्तप्राय प्रजाति के रूप में सूचीबद्ध किया है। इसके प्राकृतिक वास के विनाश की वजह से अब केवल कुछ ही बड़े पौधे मिल पाते है, वह भी अधिकांशतः उन क्षेत्रों में जहां पहुंचना दुर्गम है। अतः इसका अस्तित्व खतरे में हैं। देश में इसके उत्पादन तथा मांग–पूर्ति के बीच का अंतराल निरंतर बढ़ता जा रहा है। वैसे इसकी व्यावसायिक खेती की जानकारी भी पूरी तरह से उपलब्ध नहीं है। अतः इसके उत्पादन तकनीक की जानकारी बढ़ाने की अत्यंत आवश्यकता है।

जलवायु

गुग्गल एक उष्ण कटिबंधीय पौधा है। गर्म तथा शुष्क जलवायु इसके लिए उत्तम पायी गयी है। सर्दियों के मौसम में जब तापमान कम हो जाता है तो पौधा सुषुप्तावस्था में पहुंच जाता है और वानस्पतिक वृद्धि कम हो जाती है। इसकी फसल गुजरात, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में की जा सकती है। प्राकृतिक रूप में यह पहाड़ी एवं ढालू भूमि में उगता है। उन क्षेत्रों में जहां वार्षिक वर्षा 10 से 90 सें. मी. तक होती है तथा पानी का जमाव नहीं होता है, इसकी बढ़वार अच्छी पायी गयी है। इसमें 40 से 45 डिग्री सेल्सियस की गर्मी से 3 डिग्री सेल्सियस तक की ठंड सहन करने की क्षमता होती है। बिहार में रोहतास, गया, औरंगाबाद, बांका, नवादा जिलों में प्रयोगात्मक तौर पर खेती किया जा सकता है।

भूमि का चयन

यह समस्याग्रस्त भूमि जैसे लवणीय एवं सूखी रहने वाली भूमि में सुगमता से उगाया जा सकता है। दुमट व बलूई दुमट भूमि जिसका पी.एच मान 7.5–9.0 के बीच हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त पायी गयी है। इसे समुचित जल निकास वाली काली मिट्टियॉ में भी सुगमतापूर्वक उगाया जा सकता

है। भूमि में पानी का निकास काफी अच्छा होना चाहिए। वैसे पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी खेती के लिए अधिक धूप वाली ढलान भूमि का चुना करना चाहिए। क्षारीय जल, जिसका पी.एच. मान 8.5 तक होता है, के प्रयोग से भी पौधें की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रजातियां

इसमे प्रजातियों के विकास पर ज्यादा कार्य नहीं हुआ है, लेकिन हाल ही में ''मरूसुधा'' नामक किस्म को केन्द्रीय औषधीय एवं सगंधीय संस्थान, लखनउ ने विकसित किया है, जो गुग्गल गोंद की अधिक पैदावार देती है।

प्रवर्धन

इसका प्रवर्धन बीज तथा वानस्पतिक, दोनों विधियों से कि जा सकता है। चूंकि बीज द्वारा उगाये गये पौधों की बढ़वार कम होती है और उसमें विविधता पाई जाती है, इसलिए वानस्पतिक प्रवर्धन को प्रोत्साहित किया जाता है। प्राकृतिक रूप से बीज द्वारा ही प्रवर्धन होता है तथा जुलाई से सितम्बर के दौरान फलित बीजों का अंकुरण अच्छा पाया जाता है।

वानस्पतिक प्रवर्धन के लिए कटिंग, लेयरिंग (गूटी) तथा वीनियर ग्राफ्टिंग किया जा सकता है। कटिंग को स्वस्थ पौधों से मई से जुलाई के बीच लेना चाहिए। मुख्यतः 20 से 25 से.मी. लंबी तथा 1.0 से 1.5 सें.मी. व्यास वाली कटिंग द्वारा पौधे सुगमतापूर्वक तैयार किये जा सकते हैं। प्रयोगों से पाया गया है कि यदि कटिंग के निचले भाग को 100 पी.पी. एम. आई.बी.ए. के घोल में 14 से 16 घंटों तक डुबोकर रखने के पश्चात लगाया जाए तो सफलता अधिक मिलती है। कटिंग को पॉलीथीन बैग में भी तैयार किया जा सकता है। इसके लिए मिट्टी और बालू के समान अनुपात (1:1) का मिश्रण उपयुक्त पाया गया है। मातृ पौधे से लिए गये कटिंग को छाया में रखकर दस दिन के पश्चात भी प्रयोग में लाया जा सकता है। कटिंग को 8 से 10 से मी. उंची क्यारियों (1x1 मी.) में 15ग8 से.मी. की दूरी पर लगाना चाहिए और नियमित रूप से सिंचाई करते रहना चाहिए। क्यारियों से पानी का निकास अच्छा होना आवश्यक है। पानी का समुचित निकास न होने से कटिंग पीले पड़ने लगते हैं और मर जाते हैं। विगत वर्षो में पतले एवं मुलायम टहनियों से भी पौधे तैयार करने की विधि विकसित की गयी है। इसके लिए पतली एवं मुलायम टहनियों (20 से 25 सें.मी. लंबी) को 1500 पी.पी. एम. आई.बी.ए. (इन्डोल ब्युटाइरिक एसिड) के घोल में 5 सेकंड के लिए उपचारित करके लगाने से अच्छी सफलता मिलती है

और इस विधि से पौधे तैयार करने के लिए मुलायम टहनियों को मई–जून (प्रथम वर्षा से पहले) के महीने में छायादार स्थान में लगाना चाहिए।

पौधों की रोपाई

सामान्यतः पौधों को 3x3 मीटर की दूरी पर 30x30x30 से.मी. के गड्ढे तैयार कर लेने चाहिए और 3 से 5 कि.ग्रा. पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर की खाद को मिट्टी के साथ मिलाकर 5 सें.मी. की उंचाई तक गड्ढ़ो में भर देना चाहिए । यदि प्रक्रिया 15 जून से पहले पूर्ण कर लेनी चाहिए। वर्षा होने के पश्चात जुलाई के महीने में पौधें की रोपाई करनी चाहिए ।

पौधों की देखभाल

पौधे लगाने के प्रथम वर्ष में ज्यादा देखभाल की आवश्यकता पड़ती है। पौधों के आसपास की घास को नियमित रूप से निकालते रहना चाहिए और आवश्यकतानुसार एक यादो सिंचाई करनी चाहिए। पौधों का इस प्रकार से कृंतन करें कि एक से दो शाखाएं उपर की तरफ बढ़ें और अन्य छोटी शाखाओं को काट लेना चाहिए जिससे इनका उचित विकास होता है। प्रति वर्ष अक्टूबर–नवम्बर में पंक्तियों के बीच के खरपतवार को निकालते रहना चाहिए। ज्यादा खरपतवार कटुवा कीट प्रकोप में सहायक होता है।

जीवन चक्र

कटुवा कीट का वयस्क शुलभ होता है, जो धूसर भूरे रंग का और 40 से 45 मि.मी. लम्बा होता है। इसके अगले पंखों पर गुर्दे के आकार के दो धब्बे पाये जाते है। पश्च पंख का बाहरी किनारा काला होता है। इस कीट का व्यस्क रात्रिचर होता है। मादा कीट रात्रि के समय उड़ान भरकर मैथुन करती है तथा मैथुन के 2–3 दिन पश्चात रात्रि के समय मृदा या पत्तियों की निचली सतह पर 4–7 अंडे देती है। मादा कीट गुच्छों में अंडे देती है तथा अंडों की संख्या 30–35 तक होती है। एक मादा अपने जीवनकाल में 200 से 350 तक अंडे देती है। ये अंडे 4–7 दिन में फट जाते है तथा अंडों से लगभग 15 सें.मी. लम्बी सूंडी निकलती है। अंडे से निकलने के पश्चात यह भूमि पर गिरी पत्तियों को या जमीन को स्पर्श करती हुई पत्तियों को खाती है। इस कीट का जीवन चक्र चार अवस्थाओं में, अंडा सूंडी, प्यूपा, एवं मॉथ, पूरा होता है। इस कीट की सूंडी पांच बार निर्मोचन करके पूर्ण विकसित होती

है। पूर्ण विकसित सूंडी 400 से 450 मि. मी. लम्बी तथा मटमैले रंग की होती है। पूर्ण रूप से विकसित सूडियां मृदा में जाकर 50 से 70 से.मी. की गहराई पर कुकून बनाकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाती हैं। प्यूपा काल 8 से 12 दिन में पूर्ण हो जाता है। इस कीट का जीवन चक्र पूरा होने में लगभग 35 से 52 दिन लग जाते हैं।

कटुवा कीट का प्रबंधन

कटुवा कीट एक बहुमुखी कीट है तथा इसकी सूंडियां दिन में मृदा के अंदर रहती है तथा रात्रि में पौधों के तनों, शाखाओं तथा मृदा के अंदर आले के कंदों को क्षमि पहुंचाती है। अतः इस कीट के नियंत्रण के लिये समेकित कीट प्रबंधन को अपनाना आवश्यक है।

समेकित कीट प्रबंधन में निम्न तरीकों को अपनाकर इस कीट के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

1. प्रकाश जालः इस कीट की रोकथाम के लिये प्रकाश जाल का प्रयोग करना चाहिए। इस कीट का व्यस्क रात्रिचर होता है तथा प्रकाश के उपर बड़ी सख्या में आकर्षित होता है। इस कीट को मार्च से सितम्बर तक प्रकाश जाल पर एकत्रित करके नष्ट किया जा सकता है।
2. बुआई के समय में फेर–बदल : यदि बेमौसमी सब्जियों के पौधों की रोपाई अप्रैल से पहले मार्च के अंतिम सप्ताह तक कर दी जाये तो इस कीट का प्रकोप होने तक पौधें की बढ़वार अच्छी हो जाती है, जिससे इस कीट की सूंडियां पौधों के तनों को काट नहीं सकती है।
3. सब्जी के खेतों में जगह–जगह घास के छोटे–छोटे ढेर लगा देने चाहिये, जिससे सूंडियां खाने के पश्चात इन ढेरों में पहुंच जाती है। इनको पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए ।
4. एपेन्टेलिस प्रजाति तथा ग्रीन मसकरडाइन रोग इस कीट के प्राकृतिक शत्रु है।
5. जैविक कीटनाशी का प्रयोग : बी.टी. (बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस) नामक जैविक कीटनाशी, जो बाजार में डाईपेल, डोलफिन, बायोलेप, बायोस्प आदि नामों से प्रचलित है, का 1.0 कि.ग्रा. /हैक्टर (20 ग्राम/नाली) की दर से पौधें की रोपाई के प्श्चात छिड़काव करना चाहिए ।
6. रासायनिक विधि द्वारा : क्लोरपाईरीफॉस नामक कीटनाशी की 2.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। प्रथम छिड़काव पौधे की रोपाई के 2–3 माह तथा द्वितीय छिड़काव एक सप्ताह बाद करना चाहिए ।

गोंद निकालना

सामान्यतः 6 से 8 वर्ष पुरानी झाड़ियां, गोंद निकालने हेतु तैयार हो जाती है। झाड़ियों के तने पर चीरा दिसम्बर से फपरवरी में लगाना चाहिए। चीरा लगाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि चीरा बाहरी छाल की मोटाई से ज्यादा न हो। गोंद पीले रंग के गाढ़े द्रव्य के रूप में बाहर निकलता है। चीरा लगाने के दस से पन्द्रह दिनों के बाद गोंद इकट्ठा कर लेना चहिए। गोंद इकट्ठा करते समय सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे बालू या मिट्टी गोंद के साथ मिश्रित न हो सके।

6 से 8 साल पुरानी झाड़ियों से औसतन 300 से 400 ग्राम गोंद प्राप्त होता है जिसकी बाजार में वर्त्तमान दर 500 से 600 रूपये प्रति कि.ग्रा. तक है। राज्य के दक्षिणी भाग के वैसे किसान जिनकी ऊँची जमीन बेकार बंजर पड़ी हो वे प्रयोगात्मक तौर पर गुग्गुल की खेती कर सकते हैं। परिणाम प्राप्ति में लगभग छः वर्ष लगेंगे।

कालमेघ *(Andrographis peniculate)*

कालमेघ एक महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक तथा देशी पद्धति में प्रयोग होने वाला औषधीय पौधा है। इसको कल्पनाथ, करियातु हरा चिरायता तथा उड़िया में भुईनिम्बा भी कहते है। अधिकतर इसको वनों सें एकत्र किया जाता है। इसको चिरायता के स्थान पर भी दवा के रूप में लोग प्रयोग करते हैं। यह उत्तर प्रदेश से असम तक, मध्यप्रदेश, जम्मू, तमिलनाडु केरल तथा उड़ीसा आदि स्थानों में मैदानी भागों में विस्तृत रूप से वितरित है। इसकी खेती जल्दी ही प्रारंभ की गई है। इसकी गुणवत्ता को देखते हुए इसकी खेती का प्रसार करने की आवश्यकता है।

इसके तने, पत्ती, पुष्पक्रम आदि सम्पूर्ण भागों का दवा में प्रयोग होता है। यह कफ पित्तशामक, यकृत उत्तेजक, लीवर के रोगों में प्रयुक्त, अग्निमंदता दूर करके यकृत वृद्धि कम करने वाला, कब्ज व कृमि रोगों में लाभकारी, पित्तसारक व रेचक औषधि है। तेज बुखार में भी लाभकारी है। अपने ज्वरधन रक्त शोधक गुण के कारण मलेरिया जन्य यकृत, प्लीहा वृद्धि तथा अल्कोहलिक व न्यूट्रीशनल सिरोसिस में प्रयुक्त होता है। ज्वर के बाद की दुर्बलता दूर करता है। डायबिटीज में भी लाभकारी है।

जलवायु

इसको गर्म नम तथा पर्याप्त सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। मानसून आने के बाद इसकी काफी वृद्धि होती है और सितम्बर के मध्य जबकि तापक्रम न ज्यादा गर्म और न ज्यादा ठंडा होता है तब फूल आने लगते हैं। फूल तथा फलियों का बनना दिसम्बर के मध्य तक होता है। इस समय उत्तरी भारत में तापक्रम कम हो जाता है। दक्षिण भारत क्षेत्र में इस तरह की जलवायु अवस्था मध्य अक्टुबर से अन्त फरवरी या मार्च के प्रथम सप्ताह तक होती है।

भुमि

मध्यम उर्वरता वाली उचित जल निकास युक्त विभिन्न प्रकार की भूमियों बलुई दोमट, दोमट भूमि में

इसकी खेती की जा सकती है। इसको छायादार बेकार की भूमियों में भी उगाया जा सकता है।

भूमि की तैयारी

इसके खेत की तैयारी के लिए एक जुताई मिट्टी पलट हल से तथा 1.2 जुताई देशी हल या हैरो से करते हैं तथा पाटा लगाकर भूमि को समतल कर देते हैं। इससे भूमि भुरभुरी तथा समतल हो जाती है।

प्रवर्धन

प्रकृति में फलियों के कटने के बाद बीजों के बिखराव से इसके पौधे उगते है। इसका वर्धी प्रसारण विशेष परिस्थितियों में पौधों की गांठों पर लेयरिंग विधि द्वारा कर सकते है। इसका बीज छोटा होता है तथा 5–6 महीने सुषुप्तावस्था में रहता है। इसके बीजों को नर्सरी में उगाते हैं। एक हेक्टेयर कालमेघ उगाने हेतु 10 X 2 मीटर नाप की तीन क्यारियों की आवश्यकता होती है। इस क्यारियों को अच्छी तरह मई में गुड़ाई करके भुरभुरी व समतल बनाते हैं। जीवांश पदार्थ अथवा सड़ी गोबर की खाद का प्रयोग स्वस्थ नर्सरी उगाने हेतु क्यारियों में करना चाहिए। मई के तीसरे सप्ताह में 250 से 300 ग्राम बीज जिसका अंकुरण 70–80 प्रतिशत हो को क्यारी की सतह पर मिट्टी मिलाकर छिड़क देना चाहिए। बीजों को हल्की मिट्टी से एक मुलायम परत से ढक देना चाहिए।

क्यारियों को उपयुक्त मल्व से ढ़क देना चाहिए तथा पानी वाले हजारे से क्यारी की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना याहिए। जब बीज अंकुरित होकर पौधे निकल आये (6–7 दिन) तुरन्त मल्व को हटा देना चाहिए। यदि संभव हो तो सीडलिंग को छाया में मई–जून में उगाना चाहिए क्योंकि उस समय काफी गर्मी होती है।

रोपण

अच्छी तरह से तैयार की हुई क्यारियों में जून के दूसरे पखवारे से जुलाई तक (एक महीने की पौध) पौध का रोपण करते है। भूमि की उर्वरता के अनुसार पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30–60 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30–45 से॰मी॰ रखते है। साधारणतया 30X30 सेमी. दूरी भी रख सकते है। रोपाई के एक दिन पहले क्यारियों की सिंचाई कर देना अच्छा रहता है। रोपाई दोपहर के बाद करना चाहिए। तथा पौध पूर्णरूपेण स्थापित हो जाये इसके लिये रोपण बाद अवश्य सिंचाई करनी चाहिये।

खाद तथा उर्वरक

कालमेघ को कम तथा मध्य उर्वकता वाली भूमियों में उगाया जा सकता है। यदि उपलब्ध हो तो 10–15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद को प्रयोग किया जा सकता है। साधरणतया इसको 80 किलो नत्रजन तथा 40 किलो फास्फोरस प्रति हेक्टेयर देने की आवश्यकता होती है। इसके शाकीय वृद्धि अच्छी होती है तथा उपज बढ़ जाती है। नत्रजन की मात्रा दो भागों में करके 30–45 दिन के अंतर पर डालना चाहिए। करीब 3–4 टन गोबर की खाद का प्रयोग नर्सरी में कर दिया जाता है। कम पोटाश वाली भूमि में 30 किग्रा. प्रति हेक्टयर पोटाश दिया जा सकता है।

सिचाई

उत्तरी भारत में यदि उपयुक्त रूप से उचित अंतराल पर वर्षा हो रही हो तो इसकी फसल के लिए वर्षा पर्याप्त होती है। लेकिन नर्सरी में पहले 2–3 सिंचाई की अवश्यकता होती है। नवम्बर–दिसम्बर में सिंचाई करने विशेष लाभ नहीं होता है क्योंकि शाकीय पैदावार की वृद्धि रूक जाती है और फूल व फली बनते हैं।

निराई–गुड़ाई

फसल के उचित रूप से बढने हेतु एक या दो निकाई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। मानसून के समय फसल पर्याप्त रूप से बढ़ती है तथा जमीन को घेर लेती है जिससे खरपतवार दब जाते है और निराई गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती।

कटाई

अधिकतम शाक उपज प्राप्त करने हेतु 90–100 दिन बाद जब पत्तियाँ गिरना प्रारम्भ हों तो कटाई कर देनी चाहिए तथा 100–120 दिन में कटाई खत्म कर देना चाहिये। यदि एकवर्षीय रूप में फसल को मई–जून में उगाया गया हो तो उसकी कटाई सितम्बर में जब फूल आना प्रारम्भ हो जाये तब करना चाहिए। ऐसे स्थान जहाँ इस फसल को बेकार की भूमि में, मार्जिनल भूमि पर लगाना हो उसकी दो कटाई एक अगस्त में तथा दूसरी नवम्बर–दिसम्बर में ली जा सकती है। इसके लिए कृषि क्रियाओं का उचित प्रबन्ध आवश्यक है। जाड़े के मध्य फसल सुषुप्तावस्था में रहती है। फूल निकलने के समय पत्तियों में ऐंड्रोग्रफेलाइट की मात्रा अधिक होती है तथा यह पौधों के सम्पूर्ण भागों में पाया जाता हैं। इसलिए सम्पूर्ण पौधे के ऊपरी भाग को काट कर छाया में सुखाना चाहिए।

पैदावार

मानसून में अच्छी तरह कृषि क्रियाओं का प्रबन्ध करने से इस फसल की 3.5 से 4 टन सूखी शाक उपज प्राप्त की जा सकती है।

कीट तथा बीमारियां

इस फसल पर आर्थिक रूप से नुकसान करने वाले कीटों तथा बीमारियों का प्रकोप लगभग नहीं होता है।

आय–व्यय का विवरण:

क्र.	व्यय	रूपये
1.	बीज	2000.00
2.	नर्सरी का उगाना तथा प्रबन्ध	500.00
3.	खेत की तैयारी तथा क्यारी निर्माण	3000.00
4.	खाद तथा उर्वरक का प्रयोग	2000.00
5.	रोपण	1000.00
6.	सिंचाई	2000.00
7.	कटाई	3000.00
8.	सुखाई, भंडारण	4000.00
9.	विभिन्न व्यय एवं परिवहन	8000.00
	योग	25,000.00

आय प्रति हेक्टेयर

3.0 टन शुष्क शाकीय पैदावार रू. 25,000.00 प्रति टन की दर से : 75,000.00

शुद्ध आय : 75,000.00–25,000.00 – 50,000.00 **रूपये।**

राज्य में कालमेघ की खेती भोजपुर, रोहतास, कैमूर, समस्तीपुर व अन्य कई जिलों में छिटपुट रूप से हो रही है। कालमेघ के सूखा पाचांग की माँग काफी अच्छी है। कालमेघ के फसल विस्तार की अच्छी सम्भावनाएं राज्य में हैं।

कोलियस फोर्सखोली *(Coleus forskholi)*

कोलियस फोर्सकोली जिसे पाषाणभेद अथवा पत्थरचूर भी कहा जाता है, उस औषधीय पौधों में से है, वैज्ञानिक आधारों पर जिनकी औषधीय उपयोगिता हाल ही में स्थापित हुई है। भारतवर्ष के समस्त उष्ण कटिबन्धीय एवं उप–उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों के साथ–साथ पाकिस्तान, श्रीलंका, पूर्वी अफ्रीका, ब्राजील, मिश्र, ईथोपिया तथा अरब देशों में पाए जाने वाले इस औषधीय पौधे को भविष्य के एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधे के रूप में देखा जा रहा है। वर्त्तमान में भारतवर्ष के विभिन्न भागों जैसे तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा राजस्थान में इसकी विधिवत खेती भी प्रारंभ हो चुकी है जो काफी सफल रही है।

कोलियस फोर्सखोली के पौधे का विवरण

कोलियस का पौधा लगभग दो फीट ऊँचा एक बहुवर्षीय पौधा होता है। इसके नीचे गाजर के जैसी (अपेक्षाकृत छोटी) जड़े विकसित होती हैं तथा जड़ों से अलग–अलग प्रकार की गंध होती है तथा जड़ों में से आने वाली गंध बहुधा अदरक की गंध से मिलती जुलती होती है। इसका काड प्रायः गोल तथा चिकना होता है तथा इसकी नोड्स पर हल्के बाल जैसे दिखाई देते है। इसी प्रजाति का (इससे मिलता जुलता) एक पौधा प्रायः अधिकांश घरों में शोभा कार्य हेतु तथा किचन गार्डन्स में लगाया जाता है। जो डोडीपत्र (कोलियस एम्बोनिक्स अथवा कोलियस एरोमेटिक्स) के रूप में पहचाना जाता है। कोलियस एरोमैटिक्स को हिन्दी में पत्ता अजवाइन कहा जाता है तथा मराठी एवं बंगाली में पत्थरचुर। इसे पत्ता अजवाइन इसलिए कहा जाता है क्योकिं इसके पते से अजवाइन जैसी खुशबू आती है तथा औषधीय उपयोग के साथ–साथ कुछ घरों में लोग इसके भजिए बनाकर भी खाते है। इस प्रकार से तो कोलियस फोर्सखोली तथा कोलियस एरोमेटिक्स एक जैसे ही दिखते हैं परन्तु जहां कोलियस एरोमैटिक्स में अजवाइन जैसी खुशबू आती है वहां कोलियस फोर्सकोली में इतनी तीव्र गंध नहीं होती। दूसरे कोलियस एरोमैटिक्स के पत्ते काफी मांसल (Spongy) होते है जबकि कोलियस फोर्सखोली के पत्ते ज्यादा मांसल नहीं होते।

कोलियस फोर्सकोली में मुख्यता बार्बेटुसिन, प्लैक्ट्रिन, प्लैक्ट्रिनॉन–ए : कोलियोल, एसीटोजाइकोलीसोल, एलाइलरोलीनोन, कोलियोनोन, कोलियोसोल, डीआक्सीकोलीनोल, क्रोसीटीन डायलीहाईड, नेप्थोपाईरोन्स, सीकोएबिटेन डिटरपीन 1 तथा 2 तथा फोर्सकोलीन नामक तत्व पाए जाते है।

विभिन्न भाषाओं में पाषाणभेद के नाम

हिन्दी	:	पाषाणभेद, अथवा पत्थरचुर
संस्कृत	:	मयनी, माकन्दी, गन्धमूलिका
कन्नड़	:	मक्काड़ी बेरू, मक्काण्डी बेरू अथवा मंगना बेरू
मराठी	:	मैमनुल
वानस्पतिक नाम	:	कोलियस फोर्सकोली अथवा कोलियस बार्बेट्स बैन्थ (Coleus forskholi syn. barbatus Briq.)
वानस्पतिक कुल	:	लैबिएटी / लैमिएसी (Family) (Lamiaceaer)

क्या कोलियस फोर्सखोली को पाषाण अथवा पत्थरचूर कहना उपयुक्त है?

औषधीय जगत में पाषाणभेद अथवा पत्थरचुर शब्द का उपयोग उन विभिन्न औषधीय पौधों के लिए किया जाता है जिनमें शरीर के विभिन्न भागों जैसे किडनी, ब्लैडर आदि में पाई जाने वाली पथरी अथवा पत्थर (स्टोन आदि) को तोड़ने गलाने की क्षमता होती है। इसे एक संयोग ही कहा जा सकता है कि हमारे देश के विभिन्न भागों में ऐसे दस से अधिक औषधीय पौधे पाए जाते हैं जो उनके मूलभूत गुणों में भिन्नता होने बावजुद "पाषाणभेद" के रूप में जाने एवं पहचाने जाते है।

पिछले पृष्ठ पर दिये गये विवरणों से देखा जा सकता है कि ऐसे अनेक औषधीय पौधे है जिन्हें पाषाणभेद अथवा पत्थरचुर के रूप मे जाना जाता है। ऐसे में कोलियस फोर्सकोली के लिए पत्थरचुर अथवा पाषाणभेद शब्द सुविधा की दृष्टि से प्रयुक्त तो किया जा सकता है परन्तु तकनीकी रूप से शायद यह सही होगा। फलतः प्रस्तुत चर्चा में वर्णित किए जा रहे पौधे हेतु इसके वानस्पतिक नाम "फोलियस फोर्सकोली" का ही यथावत उपयोग किया जा रहा है। राजनिघण्टुकार ने इसकी पहचान कामन्दी, गन्धमूलिका के नाम से की है।

कोलियस फोर्सखोली के औषधीय उपयोग

औषधीय उपयोगिता की दृष्टि से कोलियस एक अत्याधिक महत्वपूर्ण पादप के रूप में उभर रहा है।

औषधीय उपयोग में मुख्यता इसकी जड़ें प्रयुक्त होती हैं जिनसे "फोर्सकोलिन" नामक तत्व निकाला जाता है। जिन प्रमुख औषधीय उपयोगों में इसें प्रयुक्त जा रहा है, वे निम्नानुसार हैं –

हृदय संबंधी रोगों के उपचार हेतु

विभिन्न हृदय विकारों जैसे एन्जाइन, हायपरटेन्शन तथा हृदयाघात के उपचार के लिए फोर्सकोली काफी उपयोगी पाया गया है। रक्त को पतला करने जैसे इसके प्रभावों के कारण यह "स्ट्रोक" आदि के उपचार में भी प्रभावी पाया जाता है। प्लेटेलेट एक्टीवेशन तथा एग्रीगेशन जैसे इसके प्रभावों के कारण हृदयघात की स्थिति में यह एस्प्रीन के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

वजन कम करने हेतु / मोटापा दूर करने हेतु

कोलियस फोर्सखोली में शरीर में संग्रहित वसा को तोड़ने की क्षमता होती है। इसके साथ–साथ यह एडीपोज टिश्युज के संयोजन को भी रोकता है। यह लियोलाइटिक हार्मोन्स की गतिविधि को भी बढ़ाता है। इन सबके फलस्वरूप इसके सेवन से व्यक्ति के अतिरिक्त मोटापे में कमी आती है।

पाचन शक्ति बढ़ाने में सहायक

कोलियस फोर्सखोली के सेवन से स्लाइवा का स्त्राव बढ़ता है तथा हाईड्रोक्लोरिक एसिड, पैप्सिन तथा पैनक्रीटिक एन्जाइम्स ज्यादा मात्रा में पैदा होते हैं जिससे छोटी आंत में पुष्टिकारक पदार्थो की ग्राह्यता बढ़ती है।

उपरोक्त के साथ–साथ कोलियस फोर्सखोली अस्थमा, एग्जिमा, आंतो के दर्द, पेशाब में दर्द, विभिन्न प्रकार के एलर्जी, महिलाओं में महावारी के दौरान होने वाले दर्द, उच्च रक्तचाप तथा विभिन्न चर्मरोगों आदि के उपचार में प्रभावी सिद्ध हुआ है जिसे देख कर यह सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि कोलियस फोर्सकोली भविष्य में एक अत्यधिक महत्वपुर्ण औषधीय पादप बनने जा रहा है। औषधीय उपयोगिता के इतने महत्वपुर्ण पादप के कृषिकरण को बढ़ावा देने की नितान्त आवश्यकता है। वर्तमान में भारतवर्ष के कई राज्यों जैसे महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश आदि में इसकी खेती प्रारंभ हो चुकी है जिसके परिणाम काफी उत्साहवर्धक हैं। वर्त्तमान में विभिन्न क्षेत्रों में हो रही इसकी खेती के आधार पर इसकी कृषि तकनीकी को निम्नानुसार देखा जा सकता है।

कोलियस फोर्सखोली की कृषि तकनीक

कोलियस फोर्सखोली की खेती इसकी जड़ों की प्राप्ति के लिए की जाती है। यूं तो कोलियस

फोर्सखोली एक बहुवर्षीय पौधा है परन्तु कृषिकरण की दृष्टि से छः माह की अवधि में इसकी जड़ो में उपयुक्त तत्व विकसित हो जाते है। इसकी खेती की विधि से संबंधित अन्य विवरण निम्नानुसार है –

उपयुक्त जलवायु

कोलियस फोर्सखोली उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की फसल है, तथा उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उपजाई जा सकती है जो गर्म तथा आर्द्र हो इस प्रकार यह दक्षिणी भारत के विभिन्न राज्यों जैसे कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, केरल एवं तमिलनाडु के साथ–साथ मध्यभारत के विभिन्न राज्यों जैसे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश तथा बिहार आदि राज्यों में सफलतापूर्वक उपजाई जा सकती है। सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों के साथ–साथ यह उन क्षेत्रों में भी उपजाई जा सकती है जहां जून से सितम्बर माह के बीच पर्याप्त वर्षा पड़ती हो तथा जहां वर्ष भर 100 से 160 सें.मी. तक सुनिश्चित वर्षा पड़ती हो।

उन्नतशील प्रजातियां

कर्नाटक राज्य में पाई जाने वाली कोलियस से चयनित आधार पर एक उन्नतशील प्रजाति जारी की गई है जिसे **"के–8"** का नाम दिया गया है। यह प्रजाति अन्य प्रजातियों की तुलना में ज्यादा उत्पादन भी देती है तथा फोर्सकोलिन भी अधिक मात्रा में पाया जाता है।

उपयुक्त मिट्टी अथवा भूमि

कोलियस की खेती उन मिट्टियों में सफलतापूर्वक की जा सकती है जो नर्म तथा पोली हो। 5.5 से 7 पी.एच. वाली ऐसी मिट्टियां जिनमें जल निकास की पर्याप्त व्यवस्था हो, इसकी खेती के लिए उपयुक्त पाई जाती है। परीक्षणों में देखा गया है कि यूं तो कोलियस लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक उपजाया जा सकता है परन्तु रेतीली दोमत, हल्की कपासिया तथा लाल मिट्टिया जिनमें जीवाश्म की पर्याप्त मात्रा विद्यमान हो, इसकी खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त पाई जाती है।

कोलियस का प्रवर्धन

कोलियस का प्रवर्धन बीजों से भी किया जा सकता है तथा कलमों से भी। वैसे व्यवसायिक कृषिकरण की दृष्टि से कोलियस का प्रवर्धन कलमों से किया जाना ज्यादा उपयुक्त होता है। इसके लिए कलमों को पहले नर्सरी बेड्स में भी तैयार किया जा सकता है तथा सीधे खेत में भी लगाया जा सकता है। नर्सरी में इसकी कलमों को तैयार करने की प्रक्रिया निम्नानुसार होती है –

नर्सरी बनाने की प्रक्रिया

कोलियस की नर्सरी बनाने की प्रक्रिया में सर्वप्रथन मई माह में इसके पुराने पौधों से इसकी 4 से 6 इंट लम्बी कलमें काट ली जाती है। ये कलमें ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक में कम से कम 6–7 पत्ते तथा कम से कम 2 या 3 आंखे (नोड्स) अवश्य हों। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कलमों को या तो नर्सरी बेड्स में तैयार किया जाता है अथवा पौलीथीन की थैलियों में रोपित करके भी तैयार किया जा सकता है। नर्सरी में यदि इन्हे लगाना हो तो पौध से पौध के बीच की दूरी कम से कम (3–3 इंच) रखी जानी चाहिए। पौलीथीन थेलियों में कलमें रोपित करने से पूर्व इन्हें कम्पोस्ट खाद, मिट्टी तथा रेत (प्रत्येक 33 प्रतिशत) डाल कर भरा जाता है। कलमों का जल्दी तथा सुनिश्चित उगाव हो इसके लिए किसी रूटिंग हार्मोन का उपयोग भी किया जा सकता है। अथवा कम से कम गौमुत्र में तो इन्हें कुछ देर तक डुबोकर रखा जाना ही चाहिए। इसी बीच 2–3 दिनों मे नर्सरी में लगाई गई इन कलमों मो पानी देते रहना चाहिए। नर्सरी में लगभग एक माह तक रखने पर इनमें पर्याप्त जड़े विकसित हो जाती है तथा तदुपरान्त इन्हें मुख्य खेत में स्थानान्तरित किया जा सकता है।

मुख्य खेत की तैयारी

जिस मुख्य खेत में पौधो का रोपण करना होता है उसकी अच्छी प्रकार तैयारी करनी आवश्यक होती है। इसके लिए सर्वप्रथम माह मई–जून में खेत की गहरी जुताई कर दी जाती है। तदुपरान्त खेत में प्रति एकड़ 5 टन अच्छी प्रकार पकी हुई गोबर अथवा कम्पोस्ट अथवा 2.5 टन वर्मीकम्पोस्ट के साथ–साथ 120 कि.ग्रा. प्रॉम जैविक खाद खेत में मिला दी जानी चाहिए।

मुख्य खेत में पौधों की रोपाई

मानसून प्रारंभ होते ही नर्सरी में तैयार की गई पौध को खुरपी की सहायता से मुख्य खेत में प्रतिरोपित कर दिया जाता है। प्रतिरोपित करते समय पौधे से पौधे की दूरी 20 से.मी. तथा कतार से कतार की दूरी 60 से.मी. रखी जाती है। इस प्रकार एक एकड़ में लगभग 34000 पौधे रोपित किए जाते है।

सिंचाई व्यवस्था

मानसून की फसल के रूप में लगाए जाने के कारण यदि नियमित अंतरालो पर वारिश हो रही हो तो फसल को अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु यदि नियमित वर्षा न हो रही हो तो

सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से प्रथम सिंचाई प्रतिरोपण के तुरंत बाद कर दी जानी चाहिए तथा तदुपरान्त प्रारंभ में तीन दिन में एक बार तथा बाद में सप्ताह में एक बार सिंचाई की जानी चाहिए।

निंदाई–गुड़ाई तथा खरपतवार नियंत्रण

नियमित सिंचाई देने के कारण तथा मानसून की फसल होने के कारण खेत में खरपतवार आना स्वाभाविक है। इसके लिए हाथ से निंदाई–गुड़ाई की जाना बांछित होगी। हाथ से निंदाई–गुड़ाई करने से एक तरफ जहां खरपतवार साफ होंगे वही भूमि भी नर्म होती रहेगी। लाईनों के बीचों–बीच कुल्पा अथवा डोरा चलाकर भी खरपतवार से निजात पाई जा सकती है।

खाद तथा अतिरिक्त भू–टॉनिकों की आवश्यकता

यूं तो खेत तैयार करते समय 5 टन प्रति एकड़ की दर से कम्पोस्ट खाद खेत में मिलाने की संतुति की जाती है परन्तु यदि जैविक खाद का उपयोग किया जाना संभव न हो तो प्रति एकड़ 16 कि.ग्राम नाइट्रोजन (8 कि.ग्रा. प्रतिरोपण के समय तथा शेष प्रतिरोपण के एक माह बाद) 24 कि.ग्रा. स्फर तथा 20 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ डाले जाने की अनुशंसा की जाती है।

फसल के प्रमुख रोग तथा बीमारियां

पत्ती पलेटने वाले केटरपिलर्स, मीली बग तथा जड़ो को नुकसान पहुंचाने वाले नीमाटोड्स वे प्रमुख कीट हैं जो इस फसल को नुकसान पहुचा सकते है। इनके नियंत्रण हेतु मिथाईल पैराथियान का 0.1 प्रतिशत घोल बनाकर पौधों पर छिड़काव किया जा सकता है अथवा पौधों की जड़ों की ड्रेंचिग की जा सकती है। इसी प्रकार कार्बोफ्युरॉन 8 कि.ग्रा. ग्रेनुअल्स का प्रति एकड़ की दर से उपयोग करके सूत्रकृमियों को नियन्त्रित किया जा सकता है। कभी–कभी फसल पर बैक्टीरियल बिल्ट का प्रकोप भी हो सकता है जिसके दिखते ही केप्टान दवा के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करके इस बीमारी को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि यह बीमारी नियंत्रित न हो तो एक सप्ताह के बाद पुनः इस दवा का छिड़काव किया जा सकता है।

फूलों की कटाई

प्रतिरोपण के दो–ढ़ाई माह के उपरान्त कोलियस के पौधों पर हल्के नीले जामुनी रंग के फूल हाने

लगते है। इन फूलों को नाखुनों की सहायता से तोड़/काट दिया जाना चाहिए अन्यथा जड़ों का विकास प्रभावित हो सकता है।

फसल की कटाई अथवा उखड़ाई

रोपण के लगभग 5 से 6 माह के अन्दर कोलियस की फसल कटाई/उखाड़ने के लिए तैयार हो जाती है। यद्यपि तब तक इसके पते हरे ही रहते है परन्तु यह देखते रहना चाहिए कि जब जड़े अच्छी प्रकार विकसित हो जाऐं (यह स्थिति रोपण के लगभग 5 से 6 माह के बाद आती है) तो पौधो को उखाड़ लिया जाना चाहिए। उखाड़ लिया जाना चाहिए। उखाड़ने से पूर्व खेत की हल्की सिंचाई कर दी जानी चाहिए ताकि जमीन गीली हो जाए तथा जड़ें आसानी से उखाड़ी जा सकें।

पौधे उखाड़ लेने के उपरान्त इनकी जड़ों को काट कर अलग कर लिया जाता है तथा इनके साथ जो मिट्टी अथवा रेत आदि लगा हो उसे झाड़ करके इन्हें साफ कर लिया जाता हे। साफ कर लेने के उपरान्त इन्हें छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है अथवा बीच में चीरा लगा दिया जाता है। इस प्रकार टुकड़ेा में काट लिये जाने के उपरान्त इन्हें धुप में सुखा लिया जाता है। अच्छी प्रकार से सूख जाने पर इन्हें बोरियों में पैक करके बिक्री हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। सूखने पर ये ट्युबर्स गीले ट्यूबर्स की तुलना में लगभग 12 प्रतिशित रह जाते है।

उपज की प्राप्ति

एक एकड़ की खेती से औसतन 8 क्विंटल सूखे ट्यूबर्स की प्राप्ति होती है जिनकी बिक्री दर यदि 3500 रू. प्रति क्विंटल मानी जाए तो इस फसल से लगभग 28000 रू. की प्राप्तिया होती है। इनके साथ–साथ प्लांटिग मेटेरियल की बिक्री से भी 6000 रू. की अतिरिक्त प्राप्तियां होगी। इनमें से विभिन्न कृषि क्रियाओं पर यदि 11800 रू. का खर्च होना माना जाए तो इस छः माह की फसल से किसान को प्रति एकड़ 22000 रू. का शुद्ध लाभ प्राप्त हो सकता है।

निःसंदेह कोलियस फोर्सखोली एक बहुउपयोगी औषधीय फसल है। न केवल इसके औषधीय उपयोग बहुमूल्य हैं बल्कि अपेक्षाकृत नई फसल होने के कारण इसका बाजार भी काफी समय तक बने रहने की संभावनाऐं है। इस प्रकार दक्षिणी भारत तथा मध्यभारत के किसानों के लिए व्यवसायिक दृष्टि से यह एक काफी लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

कोलियस की फसल हेतु पुर्नखरीदी व्यवस्था तथा वित्तीय उपलब्धता

कोलियस की सूखी जड़ों की खरीदी हेतु कम्पनियों द्वारा पुर्नखरीदी करार (Buyback Agreement) किए जा रहे है। इस संदर्भ में मध्यप्रदेश में कार्यरत प्रमुख कम्पनी है मे. कस्तूरी हर्बल फार्म, भोपाल। इस कम्पनी द्वारा भारतीय स्टेट बैंक के साथ भी कोलियस की खेती के प्रोत्साहन हेतु अनुबंध करार दिया गया है। कोलियस की सूखी जड़ो की बिक्री हेतु पुर्नखरीदी करार करने के इच्छुक किसान भाई मे. कस्तूरी हर्बल फार्म, ग्राम : मिसरोद, जिला : भोपाल (म॰प्र॰) फोन क्र. (0755) 2499231, मोबाइल क्र. : 9826442203 पर सम्पर्क कर सकते है।

फसल पर होने वाले आय– व्यय का विवरण (प्रति एकड़)

(अ) व्यय की मदें

1.	कलमों / बीजों की लागत	5000/–
2.	नर्सरी तैयार करने की लागत	1000/–
3.	खेत की तैयारी पर लागत	2000/–
4.	खाद की लागत	2000/–
5.	पौध प्रतिरोपण का खर्च	1500/–
6.	भू–ट्रानिको / कीटनाशकों की लागत	1500/–
7.	निंदाई–गुड़ाई पर व्यय	3000/–
8.	सिंचाई व्यवस्था पर व्यय	2000/–
9.	फसल उखाड़ने पर व्यय	2500/–
10.	फसल साफ करने, सुखाने आदि की लागत	2000/–
11.	पैकिंग एवं ट्रांसपोर्टेशन पर व्यय	4000/–
	योग	**26,500/–**

(ब) कुल प्राप्तियां

1.	ट्यूबर्स/जड़ों की बिक्री से प्राप्तियां (800 कि.ग्रा. ट्यूबर्स 85 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर स	68000/–
2.	बीज/ कलमों अथवा प्लांटिंग मेटैरियल के रूप में प्राप्तियां	6000/–
	कुल योग	**74000/–**
	शुद्ध लाभ = 74000–26500 =	47500/– एकड़

जापानी पुदीना/मेन्था *(Mantha arvensis)*

मेन्था की उत्पत्ति स्थान चीन माना जाता है। चीन से यह जापान ले जाया गया, वहां से यह संसार के विभिन्न देशों में पहुंचा। मेन्था भारत में जापान से लाया गया है। इसलिए इसे जापानी पुदीना भी कहते हैं। यह फैलने वाला, बहुवर्षीय शाकीय पौध है, जिसकी ऊंचाई 1 मीटर तक हो जाती है। पत्तियों के किनारे कटे–फटे होते हैं, जिन पर सफेद रोंये पाये जाते हैं। इसमें पुष्प सफेद या हल्के बैंगनी रंग के गुच्छों में आते हैं। इसकी जड़ें गूदेदार सफेद रंग की होती है जिन्हें भूस्तारी (स्टोलन) कहते हैं। मेन्था का प्रसारण इन्हीं भूस्तारी से होता है। मेन्था लेमिएसी कुल का अत्यंत उपयोगी औषधीय पौधा है। इसका वानस्पतिक नाम मेन्था आर्वेन्सिस है। इसके ताजा शाक से तेल निकाला जाता है। ताजा शाक में तेल की मात्रा लगभग 0.8–100 प्रतिशत तक पायी जाती है। इसके तेल में मेंथॉल, मेन्थोन और मिथाइल एसीटेट आदि अवयव पाये जाते हैं। लेकिन मेन्थाल तेल का मुख्य घटक है। तेल में मेन्थाल की मात्रा लगभग 75–80 प्रतिशत होती है। इसके तेल का उपयोग कमरदर्द, सिरदर्द, श्वसन विकार के लिए औषधियों के निर्माण में किया जाता है। इसके अतिरिक्त इसके तेल का उपयोग सौन्दर्य प्रसाधनों, टुथपेस्ट, शेविंग क्रीम लोशन, टॉफी, च्यूंगम, कैन्डी, आदि बनाने में भी किया जाता है। इस प्रकार से कई प्रकार के उद्योगों में काम आने के कारण इसकी मांग बढ़ रही है।

वितरण

मेन्था की खेती विश्व के कई देशों में की जा रही है। मुख्य रूप से भारत, चीन, जापान, ब्राजील और थाइलैण्ड में इसकी खेती की जा रही है। भारत में इसकी खेती, जम्मू कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़ और उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से की जा रही है। राजस्थान में भी इसकी खेती संभव है।

जलवायु

पुदीना की खेती पर जलवायु का विशेष प्रभाव पड़ता है। अगर जलवायु अनुकूल नहीं है तो पैदावार के

साथ–साथ तेल की गुणवत्ता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इसकी खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त समझी जाती है। ऐसे क्षेत्र जहां सर्दी के मौसम में पाला और बर्फ पड़ने की संभावना रहती है। वहां इसकी खेती संभव नहीं हैं, क्योंकि इससे पौधें की बढ़वार कम हो जाती है तथा पौधों की पत्तियों मे तेल और मेन्थॉल की मात्रा भी प्रभावित होती है।

कैसी हो मिट्टी

मेन्था की खेती कई प्रकार की मृदाओं, जिसकी जल धारण क्षमता अच्छी हो, में की जा सकती है। लेकिन बलुई दोमट मृदा जिसका पी–एच मान 6.0–7.0 हो, इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है। ऐसी मृदा जिसमें जीवांश पदार्थ प्रचुर मात्रा में हों, उसमें अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसकी खेती के लिए उचित जल निकास वाली मृदा का ही चुनाव करें। जहां पानी भरता हो ऐसी मृदा इसकी खेती के एि बिल्कुल उपयुक्त नहीं है।

खेत की तैयारी

खेत की पहली गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें, इसके बाद दो जुताइयां हैरो से करें। अन्तिम जुताई से पहले 20–25 टन प्रति हे0 के हिसाब से अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में मिलाएं तथा पाटा लगाकर खेत को समतल कर लें। ध्यान रहे कि गोबर की खाद अच्छी प्रकार से सड़ी हो, अन्यथा दीमक लगने का भय रहेगा।

उन्नत किस्में

अच्छी पैदावार प्राप्त कने के लिए उन्नत किस्मों का ही चुनाव करें, लेकिन जो किस्म आप ले रहे हैं उसके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर प्रामाणिक संस्था से खरीदें। अगर किस्म के चुनाव में चूक हो गयी तो निश्चित रूप से पैदावार कम मिलेगी। मेन्था की एम. ए. एस. 1 हाइब्रिड–77, कालका, गोमती, हिमालय, कोशी और शिवालिक आदि उन्नत किस्में विकसित की जा चुकी हैं।

ध्यान रखें!

कटाई से पहले

1. क्षेत्र के अनुसार प्रस्तावित उन्नत किस्म का चुनाव करें।
2. भूस्तारी (स्टोलन) हमेशा रोगरहित खेत से लें।

3. फसल चक्र अपनाएं
4. हरी खाद के सूखें अवशेष जो सड़ नहीं सकते उन्हें खेत से बाहर निकालें
5. अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद का ही उपयोग करें।
6. भूस्तारी (स्टोलन) को बुआई से पहले फफूंदनाशक दवा से उपचारित अवश्य करें।
7. भूस्तारी (स्टोलन) 5 से0मी0 से अधिक गहराई पर न बोयें।
8. फसल की कटाई उपरांत बचे हुए अवशेष जला दें।
9. खाद और पानी समय पर दें।
10. खेत को खरपतवार रहित रखें।
11. कटाई हमेशा समय पर करें अन्यथा तेल के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा
12. हमेशा उन्नत कृषि तकनीक अपनाएं कटाई के बाद

1. फसल की कटाई के बाद शाक को अधिक समय तक धूप में न सुखाऐं
2. वैसल में शाक की निर्धारित मात्रा पूरी भरें।
3. शाक को वैसल में अच्छी तरह दबाकर भरें।
4. तेल निकालते समय पानी का उचित प्रबन्ध हो।
5. वायलर में पानी की मात्रा बराबर रखें।
6. कन्डेन्सर में पानी बराबर बढ़ता रहे।

बुआई का समय और विधि

मैदानी क्षेत्रों में इसकी बुआई 15 जनवरी से 15 फरवरी के मध्य करें। इससे पहले या बाद में बुआई करने पर अंकुरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पहाड़ी क्षेत्रों में इसकी बुआई मार्च–अप्रैल में की जा सकती है। बुआई हमेशा लाइनों में 45 x 60 सें0मी0 की दूरी पर करें।

बुआई

मेन्था का प्रसारण भूस्तारी के द्वारा होता है। बुआई के लिए भूस्तारी ऐसे खेत से लें जों रोगरहित हो।

मेन्था की बुआई दो प्रकार से की जा सकती है:

1. खेत में सीधे भूस्तारियों द्वारा : इस विधि में पहले से तैयार खेत में लाइनें बनाकर सीधे भूस्तारियों को लाइनों में 4–5 सें0मी0 की गहराई पर बो देते हैं। भूस्तारी की लम्बाई लगभग 5–6 सें0मी0 होनी चाहिए, जिसमें कम से कम 3–4 आंखें (गाठें) होनी चाहिये। बुआई से पहले भुस्तारियों को 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन के घोल में डुबोयें, जिससे फफूंदी न लगे। बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई करें। अनुकूल परिस्थितियां होने पर 15–25 दिनों में पूरा अंकुरण हो जाता है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में सीधी बुआई के लिए 4–5 क्विंटल भूस्तारियों की आवश्यकता होगी, यह मात्रा भूस्तारियों की मोटाई और बोने की दूरी के आधार पर घट बढ़ सकती है।

2. पौधे लगाकर बुआई करना : यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपयोगी है जहां रबी में कोई अन्य फसल ली गयी हो, उसी खेत में मेन्था की बुआई करनी हो यह पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयोगी है, क्योंकि जनवरी–फरवरी में वहां तापमान बहुत कम रहता है। कम तापमान होने से अंकुरण कम होता है। इस विधि में रोगरहित खेत से भूस्तारियों को खोदकर उनके छोटे–छोटे टुकड़े कर लेते हैं तथा नर्सरी में लगाकर पौधे तैयार करते हैं। 30–40 दिन बाद पौधे रोपने लायक हो जाते हैं। उस समय नर्सरी में सिंचाई करके पौधे नर्सरी से जड़ समेत उखाड़ कर चयनित खेत में लाइनों में मार्च–अप्रैल में रोप देते हैं। रोपने के बाद खेत में सिंचाई कर देते हैं। लेकिन ध्यान रहे कि देर से बुआई नहीं करें अन्यथा उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

उपरोक्त दोनों विधियों में सीधे भूस्तारियों द्वारा बुआई करना अधिक लाभकारी है।

खाद और उर्वरक

अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए 15–20 टन प्रति हैक्टर अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय मिट्टी में मिलाएं तथा इसके अतिरिक्त 120–130 कि0ग्रा0 नाइट्रोजन, 50–60 कि0ग्रा0 फास्फोरस तथा 40–60 कि0ग्रा0 पोटास प्रति हैक्टर की दर से खेत में डालें। इसमें फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की कुल मात्रा का 1/5 भाग बुआई से पहले तथा अन्तिम जुताई के समय खेत में मिलाएं। नाइट्रोजन की शेष मात्रा बाद में खड़ी फसल में दें। इसमें लगभग 20–25 कि0ग्रा0 बुआई के 35–40 दिन बाद इतनी ही मात्रा बुआई के 75–80 दिन बाद खड़ी फसल में दें, शेष मात्रा प्रथम कटाई और दूसरी कटाई के बाद खेत में डालें। लेकिन ध्यान रहे कि नाइट्रोजन देने के बाद सिंचाई अवश्य करें।

सिंचाई

प्रथम सिंचाई बुआई के तुरन्त बाद करें। बाद में 15–20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें लेकिन भूमि की किस्म के आधार पर सिंचाई का समय आगे पीछे हो सकता है। गर्मी के मौसम (अप्रैल–जून) में सिंचाई 8–10 दिन के अंतराल पर करें। नमी के अभाव में उत्पादन प्रभावित हो सकता है। कटाई केबाद सिंचाई अवश्य करें।

तेल कैसे निकलें

मेन्था का तेल आसवन संयंत्र के द्वारा निकाला जाता है। इस संयंत्र से तेल निकालने के लिए वैसल (गोल आकार का पात्र) में ताजे शाक को भर दिया जाता है। शाक को वैसल के अन्दर अच्छी तरह से दबाकर भर देते है। यह वैसल माइल्ड स्टील (एम.एस.) या स्टेनलैस स्टील (एम.एस.) के हो सकते हैं। इसमें एस. एस. के वैसल एम.एस. की अपेक्षा महंगे होते हैं। लेकिन तेल की गुणवत्ता की दृष्टि से एस. एस. के वैसल अच्छे होते हैं। यह वैसल एक पाइप के द्वारा बॉइलर से जुड़ा रहता है। बॉइलर के ऊपरी भाग में पानी भरा रहता है तथा निचले भाग में आग जलायी जाती है, आग से यह पानी गर्म होकर भाप बनती है। यह भाप पाइप के द्वारा वैसल में प्रवेश करती है। इस भाप के द्वारा मेन्था का तेल पत्तियों और तनों से उड़कर वाष्प के रूप में इकठ्ठा होता है। यह वाष्प वैसल से कन्डेन्सर में एक पाइप के द्वारा आती है। कन्डेन्सर में लगातार ठंडा पानी एक अन्य पाइप के द्वारा बहता रहता है। जो कन्डेन्सर को ठंडा रखता है। कन्डेन्सर में वाष्प ठंडी होती है, जिससे तेल और पानी अलग–अलग हो जाते हैं। कन्डेन्सर से पानी मिश्रित तेल एक नली के द्वारा एक स्टील के पात्र में एकत्रित होता है। चूंकि तेल पानी से हल्का होता है। अतः तेल पानी की ऊपरी सतह पर तैरता है। जो एक नली के द्वारा बाहर आता रहता है, जिसे एल्यूमीनियम के पात्र में इकठ्ठा कर लिया जाता है। इस विधि से तेल निकालने में 4–6 घंटे लगते हैं। मेन्था की फसल से शाक और तेल के उत्पादन की मात्रा जलवायु, भूमि की उर्वरता, सिंचाई, कटाई का समय, तेल निकालने की विधि आदि पर निर्भर करती है।

भण्डारण

मेन्था के तेल को प्लास्टिक के डिब्बे या एल्युमीनियम के कनस्तरों (पात्र) में भण्डारण करें। भण्डारण करते समय इस बात का ध्यान रखें कि डिब्बे/पात्र में हवा नहीं रहे अन्यथा तेल खराब होने की संभावना रहती है। अतः अधिक समय के लिए तेल को भण्डारित करने के लिए डिब्बे को अच्छी पकार से बन्द करें ताकि इनमें हवा नहीं रहे तथा 2 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से सोडियम सल्फेट भण्डारित

तेल में डालें ।

निराई–गुड़ाई

बुआई के बाद सिंचाई करने पर खरपतवार काफी मात्रा में उगते हैं उस समय खेत को खरपतवार रहित रखें अन्यथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई अवश्य करें। विशेष रूप से प्रथम कटाई के बाद कुदाली या फावड़े से खुदाई करें। फसल बड़ी हो जाने पर खरपतवारों का प्रभाव बहुत अधिक नहीं होता है।

प्रमुख कीट

मेन्था की फसल को निम्न कीट नुकसान पहुंचाते है :

दीमक : दीमक द्वारा मेन्था की फसल को काफी नुकसान पहुंचाया जाता है। विशेष रूप से जब गोबर की खाद और हरी खाद भली प्रकार से सड़ी नहीं हो तथा सिंचाई का उचित प्रबंध न हो उस समय इसका प्रभाव और अधिक बढ़ जाता है। दीमक मेन्था के पौधे के तने को जो कि जमीन से लगा होता है उस भाग के सेल्युलोस को काटकर अन्दर घुस जाती है तथा अन्दर तने के भीतरी भाग को काटकर चबाती है, जिससे तने के ऊपरी भाग को भोजन नहीं मिल पाता है और धीरे–धीरे पौधा सूख जाता है।

रोकथाम

1. अच्छी प्रकार से सड़ी हुई गोबर की खाद खेत में डालें।
2. हरी खाद के सूखे अवशेष जो खेत में सड़ नहीं सकतें, उन्हें खेत से बाहर निकालें।
3. सिंचाई की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित करें।
4. दीमक का प्रकोप होने पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 4 लीटर/हेक्टेयर के हिसाब से खेत में सिंचाई के पानी के साथ डालें।

रोयेंदार सूंडी : रोयेंदार सूंडी का प्रकोप काफी क्षेत्रों में मेन्था की फसल पर देखा गया है। यह सूंडी पीले भूरे रंग की होती है। जिन पौधों पर इनका प्रभाव होता है, उनकी पत्तियां कागज की तरह सफेद जालीदार हो जाती हैं। पत्तियों के हरे भाग को इन सूड़ीयों के द्वारा खा लिया जाता है, जिससे पत्तियों के भोजन बनाने की क्षमता खत्म हो जाती है। पत्तियों का नुकसान होने के कारण तेल का उत्पादन भी

कम होता है।

रोकथाम : इस सूंडी की रोकथाम के लिए फसल की प्रारंम्भिक अवस्था में 2 मि. लीटर/लीटर (1 ली./हैक्टर) की दर से इण्डोसल्फान (0.07 प्रतिशत) का छिड़काव करना चाहिए।

काला कीट : यह जापानी पुदीने पर लगने वाला प्रमुख काले रंग का बीटल या भृंग होता है। पूर्ण विकसित यह काला कीट 5 से 7 सें.मी. लम्बा होता है। इसके पंख नीले काले तथा बहुत कड़े होते हैं। इसके शरीर के ऊपरी भाग पर हल्क नीले रंग की गोल–गोल बिन्दियां होती है। इस कीट का प्रकोप विशेष रूप से पौधें की प्रारंभिक अवस्था में होता है और यह कीट पौधों की कोमल पत्तियों को खाता है। जैसे–जैसे पत्तियां निकलती हैं, यह कीट पत्तियों को खाता रहता है। कभी–कभी पौधे पर एक भी पत्ती नहीं रहती है, जिससे तेल के उत्पादन में कमी आती है।

रोकथाम : इस कीट की रोकथाम के लिए इण्डोसल्फान (0.07 प्रतिशत) 2 मि.ली. प्रति लीटर (1 ली. /हैक्टर) पानी में घोलकर खड़ी फसल पर छिडकाव करें।

सफेद मक्खी : जापानी पुदीने में इस कीट का प्रकोप विशेष रूप से मई में होता है। यह आकार में 1–1.5 मि.मी. लम्बी दूधियां सफेद रंग की होती है। यह मक्खी मेन्था के पौधों की निचली पत्तियों पर आक्रमण करके पौधों से रस–चुसती है, जिसके कारण पौधे की वृद्धि रूक जाती है। इस मक्खी के द्धारा एक विशेष प्रकार का पदार्थ भी विसर्जित किया जाता है, जिसे हनीडिव कहते हैं। इस पदार्थ पर सूटीमोल्ड नामक कवक विकसित हो जाता है। जो कि पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को प्रभावित करता है, जिससे पत्तियां भोजन नहीं बना पाती हैं तथा पौधे की बढ़वार और उत्पादन में कमी आती है।

रोकथाम : इस मक्खी की रोकथाम के लिए आक्सीडिमेटान मिथाइल 1 मि.ली./ली. (500 मि.ली.है.) या डाइमिथोएट–1 मि.ली./ली. (500 मि.ली. है.) की दर से पानी में मिलाकर खड़ी फसल पर छिड़काव करना चाहिए ।

कटाई

मेन्था से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए इसकी कटाई पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अगर कटाई सही समय पर नहीं होती है, तो निश्चित रूप से तेल का उत्पादन तो कम होगा ही साथ ही साथ तेल की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा । इसकी कटाई का उचित समय फूल आने की अवस्था होती है। फूल आने के बाद कटाई करने पर तेल और मेन्थाल दोनों की मात्रा घटने लगती है।

देर से कटाई करने पर पंत्तियां गिर जाती हैं। मेन्था में कुल तेल का लगभग 85 प्रतिशत भाग पत्तियों में पाया जाता है। अतः पत्तियां गिरने से तेल का उत्पादन स्वतः ही कम हो जाता है। पहली कटाई बुआई के लगभग 100–110 दिन में करें। दूसरी कटाई प्रथम कटाई के लगभग 70–80 दिन के अंतराल पर करें। इस समय फूल आने की अवस्था होती है। कटाई करने से लगभग 15 दिन पहले सिंचाई हो तो कटाई नहीं करें। कटाई धारदार हंसिए या दरांती से करें। पौधें को भूमि से लगभग 8–10 सें.मी. उपर से काटें। कटाई के बाद फसल को 3–4 घंटे के लिए खेत में छोड़ दें। कटाई के बाद शाक को काटकर अधिक समय के लिए संग्रह नहीं करें अन्यथा पत्तियां सड़नी शुरू हो जायेंगी, जिससे तेल की गुणवत्ता प्रभावित होगी। कटाई से पहले खेत को खरपतवार रहित करें।

उपज

मेन्था के उत्पादन पर मृदा, जलवायु, उन्नत किस्म और वातावरण का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके उत्पादन की उन्नत कृषि तकनीक अपनाने परएक हैक्टर में लगभग 250–300 क्विंटल ताजा शाक तथा लगभग 200–250 लीटर तेल प्राप्त होता है।

मेन्था आयल की कीमत में काफी उतार–चढ़ाव है। गत मौसम में तेल की दर 600/– से 1700/– किलोग्राम तक रही है।

पिप्पली *(Piper longum linn.)*

तमिल भाषा में पिप्पली को ''आदि मारून्दु'' अर्थात प्रथम दवाई या मौलिक दवाई कहा गया है जो स्वतः ही पिप्पली की औषधीय महत्ता के साथ–साथ पिप्पली एक महत्वपूर्ण मसाला भी है तथा औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में भी इसे प्रयुक्त किया जाता है, उदाहरणार्थ राइस बीयर के किन्वण (फर्मेन्टेशन) हेतु इसका बखुबी उपयोग किया जाता है। पिप्पली के फलों के साथ–साथ इसका मूल जिसे ''पिप्पलामूल'' कहा जाता है, भी अनेकों औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त किया जाता है। परम्परागत औषधीय उपयोगों में पिप्पली का उपयोग सरदर्द, खांसी, गले से संबंधित बीमारियों, अपच एवं बदहजमी, पेट में गैस की समस्या तथा बवासीर आदि जैसे विकारों के उपचार हेतु प्रयुक्त किया जाता है। पिप्पली के फलों तथा मूल के साथ–साथ इसके पत्तों का उपयोग पान की तरह किया जाता है।

पिप्पली मूलतः मलेशिया तथा इंडोनेशिया का पौधा है। इनके साथ–साथ यह नेपाल, श्रीलंका, सिंगापुर, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, फिलीपीन्स तथा वर्मा में भी पाया जाता है। भारतवर्ष में यह मुख्यतया उष्ण प्रदेशों तथा ज्यादा वर्षा वाले जंगलों में प्राकृतिक रूप से उगता पाया जाता है। हमारे देश में यह अधिकांशतः तमिलनाडु, बंगाल, बिहार, छत्तीसगढ़, असाम, आंध्रप्रदेश, केरल, कर्नाटक, कोंकण से त्रावणकोर तक के पश्चिमी घाट के वनों तथा निकोबार द्वीपसमूहों में प्राकृतिक रूप से उगती है। इन क्षेत्रों में प्राकृतिक (जंगली) रूप से पाए जाने के साथ–साथ व्यवसायिक स्तर पर इसकी खेती देश के कई भागों जैसे महाराष्ट्र, केरल, आंध्रप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, खासी, पहाड़ियों पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु आदि में भी होना प्रारंभ हो गई है।

पिप्पली के पौधे का विवरण

पिप्पली एक गन्धयुक्त लता होती है जो भुमि पर फैलती अथवा दूसरे वृक्षों के सहारे उपर उठती है। इसके रेंगने वाले काण्डों से उपमूल निकलते है जिनसे इसका आरोहरण तथा प्रसारण होता है। इसकी पत्तियां पान के पत्तों के आकार की होती है जिनकी लंबाई प्रायः 5 से 7 सें.मी. होती है। वर्षा

ऋतु में इसके पौधों पर फूल आते हैं जिनमें शरद ऋतु में फल तैयार होते हैं। प्रारंभ में इसके फल हल्के पीले रंग के होते है जो पकने पर हरे तथा अंततः कृष्णाभ धूसरवर्ण के हो जाते है। इसके फलों पर छोटे–छोट गोल उभार पाए जाते है जो देखने में शहतूत के फलों के जैसे प्रतीत होते हैं। औषधीय उपयोग हेतु यही सूखें फल तथा पौधे का मूल प्रयुक्त किया जाता है।

विभिन्न भाषाओं में पिप्पली के नाम

हिन्दी	:	पीपल, पिप्पली, लेंडी पीपल
संसकृत	:	पिप्पली, मागधी (मगध में उत्पन्न होने वाली) कृष्णा (कृष्णाभ होने के कारण), कणा (कण युक्त), चपला (चंचल एवं तीक्ष्ण होने के कारण), तीक्ष्णतण्डुला, उष्णा, उपकुल्या, शौण्डी, कोला।
पंजाबी	:	मघ अथवा मघां
बंगाली	:	पिपुल, जत्या, पिपलामूर (पिप्पली की जड़)
मराठी	:	पिपली, पिम्पली, पान पिपली
गुजराती	:	पीपल, पिपली
तमिल	:	टिपिलि
मलयालम	:	पिप्पली, मगधी, टिप्पली
तेलगु	:	पिपुल, मोडी, पिपलु
कन्नड़	:	हिपपली, टिप्पली
अरबी	:	दार फिलफिल
फारसी	:	फिलफिल दराज
यूनानी	:	फिलफिल–ए–सुयाह, फिलफिल–ए–सुया, पिपलकलां, फिलफिल सराह
अंग्रेजी	:	इंडियन लौंग पीपर (Indian Long papper)
वानस्पतिक नाम	:	पाइपर लौंगम (Poprt Longum Linn)
वानस्पतिक कुल (Family)	:	पाइपरेसी (Piperaceae)

पिप्पली के प्रमुख भेद

राजनिघन्टु में चार प्राकर की पिप्पलियों के विवरण मिलते है। जिनहें क्रमशः पिप्पली, वनपिप्पली, सिंहली तथा गज पिप्पली के रूप में जाना जाता है। इनके संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार हैं–

(क) **पिप्पली:** इस पिप्पली को मगधी अथवा मघई पिप्पली भी कहा जाता है। बिहार के मगध क्षेत्र में होने के कारण इसका नाम मगधी पड़ा है। पंजाबी भाषा में अभी भी पिप्पली को ''मघ'' ही कहा जाता है। वानस्पतिक जगत में इस पिप्पली को ''पाइपर लौंगम'' के नाम से जाना जाता है।

(ख) **वनपिप्पली:** यह प्रायः वनों में उगती है। यह छोटी, पतली तथा कम तीक्षण होती है। इसे प्रायः ''पाइपर साइलवेटिकम'' के रूप में पहचाना जाता है। इसे बंगाली या पहाड़ी पिप्पली भी कहा जाता है। यह उत्तरी–दक्षिणी आसाम, बंगाल तथा वर्मा में अधिकता में पाई जाती है।

(ग) **सिंहली पिप्पली:** इसे जहाजी पिप्पली भी कहा जाता है क्योंकि यह श्रीलंका तथा सिंगापुर आदि देशों से हमारे यहां आयात होती थी। इसे ''पाइपर रिट्रोफ्रैक्टम'8 के रूप में जाना जाता है।

(घ) **गज पिप्पली:** इस पिप्पली के बारे में कई भ्रांतियां हैं तथा कई वैज्ञानिक इसको चब्य का फल मानते हैं। उपरोक्त में से प्रथम तीन प्रकार की पिपपलियों को अलग–अलग द्रव्य नहीं माना जाता तथा इन सभी को पिप्पली अथवा पाइपर लौंगम के रूप में पहचाना जाता है।

पिप्पली की रासायनिक संरचना :

पिप्पली के सूखें फलों में 4 से 5 प्रतिशत तक पाइपरीन तथा पिपलार्टिन नामक एल्केलाइड पाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त इनमें सिसेमिन तथा पिपलास्टिरॉल भी पाए जाते हैं। पिप्पली की जड़ों में पाइपरिन (0.15 से 0.18 प्रतिशत) पिपलार्टिन (0.13 से 0.20 प्रतिशत) पाइपरलौंगुमिनिन (0.2 से0 0. 25 प्रतिशत) तथा पाइपर लौंगुमाइन (0.02 प्रतिशत) पाए जाते हैं। इसमें एक सुगंधीय तेल (0.7 प्रतिशत) भी पाया जाता है। जो कालीमिर्च तथा अदरक के तेल जैसी खुशबू लिए होता है।

पिप्पली के प्रमुख औषधीय उपयोग

परम्परागत चिकित्सा पद्यतियों में जिन प्रमुख औषधीय कार्यो हेतु पिप्पली का उपयोग किया जाता है, वे निम्नानुसार हैं–

अस्थमा तथा ब्रोन्काइटिस के उपचार हेतु: इन विकारों के उपचार हेतु पिप्पली, कालीमिर्च तथ सोंठ

तीनों को बराबर–बराबर मात्रा से मिलाकर दिन में तीन बार लेने की सलाह दी जाती है। इस संदर्भ में धानुकर तथा उनके साथियों ने वर्ष 1984 में किए गए शोध कार्यो में पाया कि पिप्पली का सेवन अस्थमा तथा ब्रोन्काइटिस के उपचार में प्रभावी होता है।

खांसी, पेट में गैस बनने तथा मूर्च्छा के उपचार हेतु: आधा चम्मच पिप्पली का चूर्ण एक गिलास गाय के दूध के साथ लेने से इन विकारों से राहत मिलती है।

अतिसार अथवा दस्त होने की स्थिति में : दस्त के उपचार हेतु पिप्पली के पावडर का आधा चम्मच गर्म पानी के साथ लेने से राहत मिलती है।

थकान तथा यौन कमजोरी के उपचार हेतु : थकान तथा यौन संबंधी कमजोरी की स्थिति में पिप्पली तथा हरड़ के पावडर को शहद के साथ मिलाकर सेवन किया जाता है। इस प्रेपरेशन का एक चम्मच दिन में दो बार एक से दो महीने तक लेने से थकान तथा यौन कमजोरी से राहत मिलती है।

खांसी, हिचकी, खराब गले तथा सांस में अवरोध के उपचार हेतु : इन विकारों के निदान हेतु आधा चम्मच पिप्पली का पावडर, आधा चम्मच लौंग का पावडर तथा आधा चम्मच चट्टान का नमक एक कप गर्म पानी में मिलाया जाता है। इस मिश्रण को दस मिनट तक रखने के उपरांत इसे छान लिया जाता है तथा गर्म रहते ही इसका सेवन किया जाता है।

उपचय को प्रोत्साहित करने में प्रभावी : उपचय अर्थात कोशिकाओं का पुर्ननिर्माण करने में पिप्पली काफी प्रभावी पाई गई है। कई वैद्यों की राय है कि प्रतिदिन पिप्पली का एक फल एक कप दूध के साथ लेना एक प्रभावी उपचयकारी (एनाबॉलिक) होता है।

हिचकी आने तथा वमन की स्थिति में : अच्छी प्रकार पिसी हुई आधा चम्मच पिप्पली, मातुलुंग (सिट्रस मेडिका) का ज्यूस, तथा शक्कर को एक चम्मच शहद के साथ निकलने से इन विकारों से राहत मिलती है।

इन्फ्लुएंजा के निवारण हेतु : प्राथमिक अवस्था के इन्फ्लुएंजा के निवारण हेतु पिप्पली का आधा चम्मच पावडर, दो चम्मच शहद तथा आधा चम्मच अदरक के रस के साथ दिन में तीन बार लेना उपयोगी होता है।

गले के संक्रमण के उपचार हेतु : गले के इन्फेक्शन के उपचार हेतु मुलैठी, पिप्पली, वच तथा हरड़ में से प्रत्येक के 3 बड़े चम्मच, पिप्पली के छः बड़े चम्मच तथा इलायची का एक छोटा चम्मच लेकर सबका

पावडर बनाया जाता है। इस पावडर को हल्का भून करके इसे बोतलों में संग्रहित किया जाता है। इस संग्राहित पावडर को 1/4 चम्मच शहद के साथ मिश्रित करके ग्रहण करने से गले के इन्फैक्शन से राहत मिलती है।

रिंगवर्म के उपचार हेतु : विभिन्न रंग धारण करने वाले रिंगवर्म्स के उपचार हेतु पिप्पली का आधा चम्मच पावडर शहद के साथ 40 दिन तक लेने से राहत मिलती है।

हृदय रोगों के उपचार में उपयोगी : पिप्पली के सेवन से हृदय की रक्त वाहनियों का विस्तार होता है। श्री ए0 शोज तथा उनके साथियों ने वर्ष 1986 में किए गए अपने शोधकार्यो में भी इस प्रकार के परिणाम दर्ज किए हैं।

पेट विकारों में उपयोगी : पेट विकारों के उपचार में पिप्पली की उपयोगिता सर्वासिद्ध है। इस संदर्भ में एक सुप्रसिद्ध उत्पाद लवण भास्कर चूर्ण है जिससे शायद ही कोई अपरिचित हो। इस चूर्ण का निर्माण पिप्पली के फलों तथा मूल, धनियां, जीरा तथा सेंधा नामक मिलाकर किया जाता है तथा घरेलू चिकित्सा में सभी प्रकार के पेट विकारों के लिए यह एक रामबाण औषधि मानी जाती है।

इस प्रकार पिप्पली एक अत्यधिक व्यवसायिक महत्व का पौधा है जिसकी औषधियों उपयोगिता के साथ–साथ औद्योगिक उपयोगों हेतु तथा मसालों के रूप में भी काफी उपयोगिता है। उपरोक्त के साथ–साथ पिप्पली को एक महत्वपूर्ण मेध्य रसायन भी माना जाता है जिसमें बुद्धि एवं स्मरण शक्ति बढ़ाने जैसे गुण पाए जाते है। पिप्पली के परम्परागत अथवा घरेलू उपयोगों के साथ–साथ विभिन्न शोधकर्ताओं ने इससे संबंधित जो अध्ययन किए उनमें श्री पी०सी० दास तथा उनके साथियों ने वर्ष 1993 में पाया कि पिप्पली में पाया जाने वाला पिपरलीन मलेरिया रोधी है जबकि श्री ए०के० भार्गव तथा श्री एस०सी० चौहान ने वर्ष 1968 में इसमें बैक्टीरिया रोधी गुण पाए। इसी प्रकार श्री व्ही० के० कुलश्रेष्ठ तथा उनके साथियों ने वर्ष 1969 में किए गए अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि इसका सेवन सांस से संबंधित तकलीफों को दूर करता है।

पिप्पली की कृषि तकनीक

पिप्पली की खेती इसके फलों (स्पाइक्स) तथा जड़ों (मूल) की प्राप्ति के लिए की जाती है। प्रायः इसकी खेती तीन से पांच वर्ष के लिए की जाती है। लगाने के चार–पांच माह के उपरान्त पिप्पली के पौधों पर फल आना प्रारंभ हो जाते हैं जो कि प्रतिवर्ष आते हैं। पांच वर्ष तक स्पाइक्स के रूप में

पिप्पली की फसल लेने के उपरान्त इसके सम्पूर्ण पौधें को उखाड़ करके इसका मूल (पिप्पलामूल) भी प्राप्त कर लिया जाता है।

उपयुक्त जलवायु

अपनी अच्छी बढ़त के लिए पिप्पली को गर्म तथा आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। वे क्षेत्र जहां भारी वर्षा पड़ती हो अथवा जो ज्यादा आर्द्र हों, वहां भी इसकी अच्छी बढ़त होती है। प्रायः 330 से 3300 फीट तक की उंचाई वाले क्षेत्रों में यह अच्छी प्रकार पनपता है जबकि इससे अधिक उंचाई वाले क्षेत्रों में इसकी सही उपज प्राप्त नहीं हो पाती। क्योंकि प्राकृतिक (जंगली) रूप से यह अर्धछांव वाले क्षेत्रों में अच्छी प्रकार पनपता है, अतः कृषिकरण की दृष्टि से भी इसके लिए ऐसे ही क्षेत्र चुने जाने चाहिए जहां कम से कम 25 प्रतिशत छांव की व्यवस्था हों। यदि प्राकृतिक रूप से ऐसे क्षेत्र उपलब्ध न हों तो कृत्रिम रूप से ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार गर्म, आर्द्र तथा अर्धछांव वाले क्षेत्र पिप्पली की खेती के लिए ज्यादा उपयुक्त पाए जाते हैं।

उपयुक्त भूमि

पिप्पली ऐसी जीवांश युक्त दोमट एवं लाल मिट्टियों में अच्छी प्रकार उगाई जा सकती है जिनमें जलनिकास की पर्याप्त व्यवस्था हो। सामान्य पी.एच. मान वाली ऐसी मिट्टियां जिनमें नमी सोखने की क्षमता हो इसके लिए उपयुक्त पाई जाती है। आसाम के चेरापूंजी क्षेत्रों में तो यह उन मिट्टियों में भी अच्छी प्रकार उगती देखी गई है जो चूना अथवा कैल्शियम युक्त हों। वैसे ऐसे क्षेत्र जहां पान की खेती होती हो वे इसके लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं।

पिप्पली का प्रवर्धन

पिप्पली का प्रवर्धन बीजों से भी किया जा सकता है, सकर्स से भी, कलमों से भी तथा इसकी शाखाओं की लेयरिंग करके भी। वैसे व्यवसायिक कृषिकरण की दृष्टि से इसका कलमों द्वारा प्रवर्धन किया जाना ज्यादा उपयुक्त होता है। इसके लिए सर्वप्रथम इन्हें नर्सरी में तैयार किया जाता है।

नर्सरी बनाने की विधि

पिप्पली की नर्सरी बनाने का सर्वाधिक उपयुक्त समय फरवरी–मार्च माह (महाशिवरात्री के समय का) होता है। इस समय पुराने पौधों की ऐसी शाखाऐं जो 8 से 10 से.मी. लम्बी हों, तथा जिनमें से प्रत्येक में

3 से 6 तक आंखें (नोड्स) हों, काट करके पॉलीथीन की थैलियों में रोपित कर दी जाती है। रोपाई से पूर्व इन थैलियों को मिट्टी, रेत तथा गोबर की खाद (प्रत्येक का 33 प्रतिशत) डाल करके तैयार किया जाता है। थैलियों में रोपण से पूर्व इन कलमों को गौमूत्र से ट्रीट कर लिया जाना चाहिए। इन पौलीथीन की थैलियों को किसी छायादार स्थान पर रखा जाना चाहिए तथा इनकी प्रतिदिन हल्की सिंचाई की जानी चाहिए। लगभग डेढ़ से दो महीने में ये कलमें खेत में लगाए जाने के लिए तैयार हो जाती है।

मुख्य खेत की तैयारी

नर्सरी में तैयार किए गए पौधों को अंततः मुख्य खेत में रोपित करना होता है जहां ये पौधे 4–5 साल तक रहेंगे। इस दृष्टि से मुख्य खेत की अच्छी प्रकार तैयारी करने की आवश्यकता होती है। इसके लिए खेत की 2–3 बार अच्छी प्रकार जुताई करके उसमें प्रति एकड़ 5 से 7 टन तक गोबर की पकी हुई खाद मिला दी जाती है। तदुपरान्त खेत में 2x2 फीट की दूरी पर गड्ढे बना लिए जाते हैं जिनमें अंततः इन कलमों का रोपण करना होता है। इन गड्ढ़ों में से प्रत्येक में कम से कम 100 ग्राम अच्छी प्रकार पकी हुई गोबर की खाद डाल दी जाती है।

क्योंकि पिप्पली का आरोहरण के लिए किसी दूसरे सहारे की जरूरत होती है अतः खेत तैयार करते समय भी ऐसे आरोहरण की व्यवस्था की जा सकती है तथा बाद में भी। प्रायः इस दृष्टि से प्रत्येक गड्ढे के पास एक–एक पौधा एरंड, पांगरा अथवा अगस्ती का लगा दिया जाता है जो तेजी से बढ़ता है तथा पिप्पली की लताऐं इन पर चढ़ जाती हैं। आरोहण हेतु सूखी डालियां भी खड़ी की जा सकती हैं। कई क्षेत्रों में इन्हें सूबबूल अथवा नारियल के पौधों पर भी चढ़ाया जाता है।

मुख्य खेत में पिप्पली का रोपण

मानसून के प्रारंभ होते ही नर्सरी में तैयार किए गए पिप्पली के पौधों का मुख्य खेत में गड्ढ़ों में रोपण कर दिया जाता है। प्रायः एक गड्ढ़ें में दो पौधों का रोपण किया जाना उपयुक्त रहता है। जैसा कि उपरोक्तानुसार वर्णित है, मुख्य खेत में इन पौधों की रोपाई 2x2 फीट की दूरी पर की जाती है तथा इस प्रकार एक एकड़ में लगाने के लिए लगभग 20 से 25000 पौधों की आवश्यकता होती है।

आरोहण व्यवस्था

पिप्पली की लताओं को चढ़ाने के लिए आरोहण की व्यवस्था किया जाना आवश्यक होता है। इसके

लिए या तो उपरोक्तानुसार खेत में अगस्ती, एरंड अथवा पांगरा रोपित किया जा सकता है अथवा सूखे डंठल गाड़ दिए जाते हैं जिन पर ये तलाऐं चढ़ जाती है। यदि अरोहण की उचित व्यवस्था न हो तो उन लताओं पर लगने वालें फल सड़ सकते हैं। इस प्रकार इनकी लताओं के आरोहण की उपयुक्त व्यवस्था किया जाना आवश्यक होगा।

निंदाई–गुड़ाई की आवश्यकता

फसल की प्रारंभिक अवस्था में खेत की हाथ से निंदाई–गुड़ाई किया जाना आवश्यक होता है ताकि पौधों के आस–पास खरपतवारों को पनपने न दिया जाए। बाद में जब इन पौधों की लताऐं फैल जाती है तो अतिरिक्त निंदाई–गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती। वैसे यदि हो भी तो इन्हें हाथ से निकाल दिया जाना चाहिए।

सिंचाई की व्यवस्था

यद्यपि केरल राज्य के किन्हीं क्षेत्रों में पिप्पली को एक असिंचित फसल के रुप में लिया जाता है परन्तु अच्छी फसल प्राप्त करने की दृष्टि से आवश्यक है सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था की जाय। इस दृष्टि से प्रति सप्ताह एक हल्की सिंचाई कर देने से फसल अच्छी वृद्धि प्राप्त कर लेती है। सिंचाई स्प्रिंकलर पद्यति से भी की जा सकती है तथा फ्लड इरीगेशन विधि से भी। वैसे इस फसल के लिए ड्रिप विधि भी काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। खैर विधि चाहे जो भी हो परन्तु नियमित अंतरालों पर फसल की सिंचाई की जाना फसल की उपयुक्त वृद्धि के लिए आवश्यक होता है। गर्मी के मौसम में जब फसल की सिंचाई नहीं की जाती तो उस समय पौधों के पास सूखी घास अथवा पत्ते आदि बिछा कर इनकी मल्चिंग की जा सकती है।

फसल को होने वाले प्रमुख रोग तथा बीमारियॉ

पिप्पली की फसल को नुकसान पहुंचाने वाले प्रमुख कीट मीली बग तथा टिप्पा हैं। इनमें से मीली बग पौधे की जड़ों पर आक्रमण करती है तथा ग्रीष्म ऋतु में इसका प्रभाव ज्यादा होता है। इनके निदान हेतु पौधों की मई माह में एक बार तथा तदुपरान्त 2–3 बार बोर्डो मिक्सचर से ड्रेंचिंग अथवा छिड़काव किया जाना चाहिए। इसी प्रकार नीम की खली को पीस करके तथा उसका घोल बना करके पौधों पर छिड़काव करना भी लाभकारी हो सकता है।

फसल का पकना

रोपण के लगभग पांच–छः माह के उपरान्त पौधों पर फल (स्पाइक्स) बनकर तैयार हो जाते हैं। जब ये फल हरे–काले रंग के हों तो इनको चुन लिया जाता है। कई स्थानों पर इन फलों की तुड़ाई वर्ष में एक ही बार (प्रायः जनवरी माह में) की जाती है जबकि कई स्थानों पर इन्हें समय–समय पर (तीन चार बार में) तोड़ लिया जाता है।

तुड़ाई के उपरान्त इन फलों को धूप में डालकर 4–5 दिन तक अच्छी प्रकार सुखाया जाता है। जब ये अच्छी प्रकार सूख जाऐं तो इन्हे विपणन हेतु भिजवा दिया जाता है।

लताओं की कटाई–छंटाई

प्रायः फसल ले लेने के उपरान्त फरवरी–मार्च माह में पिप्पली के पौधों की कटाई–छंटाई कर दी जाती है। कुछ समय के उपरान्त इन पौधों पर पुनः पत्ते आ जाते हैं तथा ये लताऐं पुनः फलने फूलने लगती हैं। कटाई–छंटाई के उपरान्त इन पौधों पर गौमूत्र तथा बोर्डो मिक्सचर की ड्रेंचिग/छिड़काव कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रतिवर्ष इन पौधों की कटाई–छंटाई करते रहने से ये पौधे 4–5 वर्ष तक अच्छी फसल देते रहते है। कटाई–छंटाई से प्राप्त लताओं को आगे प्रवर्धन हेतु कलमों के रुप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। पांच वर्ष के उपरान्त पौधों को खोद करके उनसे मूल भी प्राप्त किए जा सकते हैं जिन्हें छोटे–छोटे टुकड़ों में काट करके पिप्पलामूल प्राप्त किए जा सकते है।

कुल उपज की प्राप्ति

प्रथम वर्ष में पिप्पली की फसल से प्रति एकड़ लगभग 4 क्विंटल सूखे फल (स्पाइक्स) प्राप्त होते हैं जोकि तीसरे से पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ 6 क्विंटल प्रतिवर्ष तक हो सकते हैं। पांचवें वर्ष में प्रति एकड़ लगभग 200 कि०ग्रा० पिप्पलामूल भी प्राप्त हो जाता है। पिप्पली के सूखे फलों की बिक्री दर 100 से 150 रु० प्रति कि०ग्रा० (औसतन 125 रु० प्रति कि०ग्रा० तथा पिप्पलामूल की बिक्री दर लगभग 150 रु० प्रति कि०ग्रा०) होती है।

पिप्पली की खेती पर होने वाले आय तथा व्यय का विवरण

(पांच वर्षीय फसल के आधार पर)/एकड़

(क) कुल लागत					
व्यय की मदें	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष
खेत तैयार करने की लागत	1500/–	–	–	–	–
खाद की कीमत	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–
बीज अथवा कलमों की लागत	10000/–	–	–	–	–
नर्सरी तैयार करने पर व्यय	1000/–	–	–	–	–
मुख्य खेत में पौधों के रोपण	1500/–	–	–	–	–
खरपतवार नियंत्रण पर व्यय	1500/–	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–
कीटनाशकों तथा टॉनिकों पर व्यय	200/–	200/–	200/–	200/–	200/–
आरोहरण व्यवस्था पर व्यय	2000/–	–	1500/–	–	–
सिंचाई व्यवस्था पर व्यय	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–
स्पाइक्स की तुड़ाई पर व्यय	800/–	800/–	800/–	1000/–	1000/–
फसल सुखाने आदि पर व्यय	500/–	500/–	500/–	500/–	500/–
कटाई, छटाई तथा अन्य व्यय	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–	1000/–
मूल खोदने पर व्यय	–	–	–	–	5000/–
कुल योग–	**22000/–**	**5500/–**	**7000/–**	**5700/–**	**10700/–**
(ख.) कुल प्राप्तियां					
फलों की बिक्री से प्राप्तियां (सूखें फल 12500 रू0 प्रति क्विंटल की दर से)	50000/– (4 क्विंटल)	50000/– (4 क्विंटल)	75000/– (6 क्विंटल)	75000/– (6 क्विंटल)	75000/– (6 क्विंटल)
पिप्पलामूल की बिक्री से प्राप्तियां (2 क्विंटल पिप्लामूल 15000 रू. प्रति क्विंटल की दर से)	–	–	–	–	30000/–
कुल योग	**50000/–**	**50000/–**	**75000/–**	**75000/–**	**105000/–**
लाभ	**28000/–**	**44400/–**	**68000/–**	**69300/–**	**94300/–**

पिप्पली की फसल से अनुमानित लाभ

पिप्पली की फसल से पिप्पली के फलों की बिक्री से प्रथम वर्ष में लगभग 50,000 रू0 तथा तीसरे से पांचवें वर्ष में लगभग 75,000 रू0 प्रति एकड़ की प्राप्तियां होती हैं। पांचवें वर्ष में पिप्पलामूल की बिक्री से लगभग 30000 रू0 की अतिरिक्त प्राप्तियां भी होती हैं। इसमें से फसल पर होने वाले खर्चों को कम करके देखा जाए तो पिप्पली की फसल से प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में क्रमशः 28,000 एवं 44,400 रू0, तीसरे तथा चौथे वर्ष में 68,000 एवं 69,300 रू0 तथा पांचवें वर्ष में 94,300 रू0 का शुद्ध लाभ प्रति एकड़ प्राप्त होता है।

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि पिप्पली काफी लाभकारी फसल है। विशेष रूप से इसके बहुआयामी उपयोगों–मसालें, औषधीय एवं औद्योगिक उपयोगों को देखते हुए एक व्यवसायिक फसल के रूप में पिप्पली काफी लाभकारी फसल सिद्ध हो सकती है। इसके साथ–साथ क्योंकि यह फसल इंटरक्रापिंग की दृष्टि से भी काफी उपयोगी फसल है, अतः इसके साथ विभिन्न औषधीय फसलें लेकर इसकी व्यवसायिक उपयोगिता और भी अधिक बढ़ाई जा सकती है। राज्य के उत्तरी भाग में इसकी खेती आसानी से की जा सकती है। गज पिप्पली की अच्छी बढ़वार राज्य के दक्षिणी भाग में भी देखा गया है।

सतावर *(Asparagus recimosus willd)*

सतावर अथवा शतावरी भारतवर्ष के विभिन्न भागों में प्राकृतिक रूप से पाई जानेवाली बहुवर्षीय आरोही लता है। नोकदार पत्तियों वाली इस लता को घरों तथा बगीचों में शोभा हेतु भी लगाया जाता है जिससे अधिकांश लोग इसे अच्छी तरह पहचानते हैं। सतावर के औषधीय उपयोगों से भी भारतवासी काफी पूर्व से परिचित हैं तथा विभिन्न भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में इसका सदियों से उपयोग किया जाता रहा है। विभिन्न वैज्ञानिक परीक्षणों में भी विभिन्न विकारों के निवारण में इसकी औषधीय उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है तथा वर्तमान में इसे एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा होने का गौरव प्राप्त है।

सतावर की पूर्ण विकसित लता 30 से 35 फीट तक ऊंची हो सकती है। प्रायः मुल से इसकी कई लताएं अथवा शाखाएं एक साथ निकलती हैं। यद्यपि यह लता की तरह बढ़ती है परन्तु इसकी शाखाएं काफी कठोर (लकड़ी के जैसी) होती हैं। इसके पत्ते काफी पतले तथा सूइयों जैसे नुकीले होते हैं। इनके साथ–साथ इनमें छोटे–छोटे कांटे भी लगते हैं जो किन्ही प्रजातियों में ज्यादा तथा किन्हीं में कम आते हैं। ग्रीष्म ऋतु में पुनः नवीन शाखाएं निकलती हैं। सितम्बर–अक्टुबर माह में इसमें गुच्छों में पुष्प आते हैं। तथा तदुपरान्त उन पर मटर के दाने जैसे हरे फल लगते हैं। धीरे–धीरे ये फल पकने लगते हैं तथा पकने पर प्रायः लाल रंग के हो जाते हैं। इन्हीं फलों से निकलने वाले बीजों को आगे बिजाई हेतु प्रयुक्त किया जाता है। पौधे के मूलस्तम्भ से सफेद ट्यूवर्स (मूलों) का गुच्छा निकलता है जिसमें प्रायः प्रतिवर्ष वृद्धि होती जाती है। औषधीय उपयोग में मुख्यतः यही मूल अथवा इन्हीं ट्यूवर्स का उपयोग किया जाता है। अपने राज्य के भोजपुर, कैमूर, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, मधुबनी, बेगूसराय, पूर्वी चम्पारण, वैशाली के कई किसान सफलतापूर्वक खेती कर रहे हैं।

सतावर की किस्में

साहित्य में सतावर की कई किस्मों का विवरण मिलता है जिनमें प्रमुख हैं– एस्पेरेगस सारमेन्टोसस, एस्पेरेगस कुरिलस, एस्पेरेगस गोनोक्लैडो, एस्पेरेगस एडसेंडेस, एस्पेरेगस आफीसीनेलिस, एस्पेरेगस

प्लुमोसस, एस्पेरेगस फिलिसिनस, एस्पेरेगस स्प्रेन्गेरी आदि। इनमें से एस्पेरेगस एडसेन्डेस को तो सफेद मूसली के रूप में पहचाना गया है जबकि एस्पेरेगस सारमेन्टोसस महाशतावरी के नाम से जानी जाती हैं। महाशतावरी की लता अपेक्षाकृत बड़ी होती है तथा मुख्यतया हिमालयी क्षेत्रों में पाई जाती है। सतावर की एक अन्य किस्म एस्पेरेगस आफीसीनेलिस मुख्यतया सूप तथा सलाद बनाने के काम आती है तथा बड़े शहरों में इसकी अच्दी मांग है। इनमें से औषधीय उपयोग में सतावर की जो किस्म मुख्यतया प्रयुक्त होती है वह है एस्पेरेगस रेसीमोसम, जिसके बारे में विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

सतावर के प्रमुख औषधीय उपयोग

जैसा कि पूर्व में वर्णित है, सतावर भारतीय चिकित्सा पद्धतियों में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख औषधीय पौधों में से एक है। जिन विकारों के निदान हेतु इसका प्रमुखता से उपयोग किया जाता हैं, वे निम्नानुसार हैं–

शक्तिवर्धक के रूप में : विभिन्न शक्तिवर्धक दवाईयों के निर्माण में सतावर का उपयोग किया जाता है। यह न केवल सामान्य कमजोरी, बल्कि शुक्रवर्धन तथा यौनशक्ति बढ़ाने से संबंधित बनाई जाने वाली कई दवाईयों जिनमें यूनानी पद्धति से बनाई जाने वाली माजून जंजीबेल, माजून शीर बरगदवली तथा माजून पाक आदि प्रसिद्ध हैं, में भी प्रयुक्त किया जाता है। न केवल पुरूषों बल्कि महिलाओं के लिए भी इससे कई दवाईयां बनाई जाती है। महिलाओं के विभिन्न योनिदोषों के निवारण के साथ–साथ यह महिलाओं के बांझपन के इलाज हेतु भी प्रयुक्त किया जाता है। इस संदर्भ में यूनानी पद्धति से बनाया जाने वाला हलवा–ए–सुपारी पाक अपनी विशेष पहचान रखता है।

दुग्ध बढ़ाने हेतु : माताओं का दुग्ध बढ़ाने में भी सतावर काफी प्रभावी सिद्ध हुआ है तथा वर्तमान में इससे संबंधित कई दवाईया बनाई जा रही हैं। न केवल महिलाओं बल्कि पशुओं–भैसों तथा गायों में दूध बढ़ाने में भी सतावर काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चर्मरोगों के उपचार हेतु : विभिन्न चर्म रोगों जैसे त्वचा का सूखापन, कुष्ठ रोग आदि में भी इसका बखूबी उपयोग किया जाता है।

शारीरिक दर्दो के उपचार हेतु : आंतरिक हैमरेज, गठिया, पेट के दर्दो, पेशाब एवं मूत्र संस्थान से संबंधित रोगों, गर्दन के अकड़ जाने (स्टिफनेस), पाक्षाघात, अर्धपाक्षाघात, पैरों के तलवों में जलन, साइटिका, हाथों तथा घुटने आदि के दर्द तथा सरदर्द आदि के निवारण हेतु बनाई जाने वाली विभिन्न औषधियों में भी इसे उपयोग में लाया जाता है।

उपरोक्त के साथ–साथ विभिन्न प्राकर के बुखारों (मलेरिया, टायफाईड, पीलिया) तथा स्नायु तंत्र (Nervous System) से संबंधित विकारों के उपचार हेतु भी इसका उपयोग किया जाता है। ल्यूकोरिया के उपचार हेतु इसकी जड़ों को गाय के दूध के साथ उबाल करके देने पर लाभ होता है। इसी प्रकार इसकी जड़ों को नारियल तेल में मिलाकर पेस्ट बनाकर लेप करने से बॉयल्स का उपचार होता है।

उपरोक्तनुसार देखा जा सकता है कि सतावर काफी अधिक औषधीय उपयोग का पौधा है। यूं तो अभी तक इसकी बहुतायत में उपलब्धता जंगलों से ही है परन्तु इसकी उपयोगिता तथा मांग को देखतें हुए इसके कृषिकरण की आवश्यकता महसूस होने लगी है तथा कई क्षेत्रों में बड़े स्तर पर इसकी खेती प्रारंभ हो चुकी है जो न केवल कृषिकरण की दृष्टि से बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी काफी लाभकारी सिद्ध हो रही हैं।

सतावर की कृषि तकनीक

सतावर की कृषि तकनीक के प्रमुख पहलू निम्नानुसार हैं–

उपयुक्त जलवायु

सतावर के लिए गर्म एवं आर्द्र जलवायु ज्यादा उत्तम मानी जाती है प्रायः जिन क्षेत्रों का तापमान 10° से 50° सेल्सियस के बीच हो, वे इसकी खेती के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। इस प्रकार ज्यादा ठंडे प्रदेशों को छोड़ कर सम्पूर्ण भारतवर्ष की जलवायु इसकी खेती के लिए उपयुक्त है। विशेष रूप से मध्यभारत के विभिन्न क्षेत्रों में यह काफी अच्छी प्रकार पनपता है। मध्यभारत के साल वनों तथा मिश्रित वनों में एवं राजस्थान के रेतीले इलाकों में प्राकृतिक रूप से इसकी काफी अच्छी बढ़त देखी जाती है।

उपयुक्त मिट्टी

सतावर का मुख्य उपयोगी भाग इसमें जड़ें होती हैं जो प्रायः 6 से 9 इंच तक भूमि में जाती हैं। राजस्थान की रेतीली ज़मीनों में तो कई बार ये डेढ़–डेढ़ फीट तक लंबी भी देखी गयी हैं। खैर! क्योंकि इसकी कंदिल जड़ों के विकास के लिए पर्याप्त सुविधाएं होनी चाहिए अतः इसके लिए आवश्यक है कि जिस क्षेत्र में इसकी बिजाई की जाए वहां की मिट्टी जिसमें जल निकास की पर्याप्त व्यवस्था हो, इसकी खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। यू तो इल्की कपासिया तथा चिकनी मिट्टी में भी इसे उपजाया जा सकता है परन्तु ऐसी मिट्टी में रेत आदि का मिश्रण करके इसे इस प्राकर तैयार करना होगा कि यह मिट्टी कंदों को बलपूर्वक बांधे नहीं, ताकि उखाड़ने पर कंद क्षतिग्रस्त न हों।

बिजाई की विधि

सतावर की बिजाई बीजों से भी की जा सकती है तथा पुराने पौधों से प्राप्त होने वाली डिस्क से भी। प्रायः पुराने पौधों की खुदाई करते समय भूमिगत कंदों के साथ–साथ छोटे–छोटे अंकुर भी प्राप्त होते हैं। जिनसे पुन– पौध तैयार की जा सकती है। इन अंकुरों को मूल पौधे से अलग करके पौलीथीन बैग्स में लगा दिया जाता है तथा 25–30 दिन में पौलीथिन में लगाए गए इन सीडलिंग्स को मुख्य खेत में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। वैसे बहुधा बिजाई इसके बीजों से ही की जाती है जिसके लिए इनकी निम्मनानुसार नर्सरी बनाई जाना उपयुक्त रहता है–

नर्सरी अथवा पौधशाला बनाने की विधि

सतावर की व्यवसायिक खेती करने के लिए सर्वप्रथम इसके बीजों से इसकी पौधशाला अथवा नर्सरी तैयार की जाती है। यदि एक एकड़ के क्षेत्र में खेती करना हो तो लगभग 100 वर्ग फीट की एक पौधशाला बनाई जाती है जिसे खाद आदि डाल कर अच्छी प्रकार तैयार कर लिया जाता है। इस पौधशाला की ऊंची होनी चाहिए ताकि बाद में पौधों को उखाड़ कर आसानी से स्थानांतरित किया जा सके। 15 मई के करीब इस पौधशाला में सतावर के (2 कि.ग्रा. बीज एक एकड़ हेतु) बीज छिड़क दिए जाने चाहिएं। बीज छिड़कने के उपरान्त इन पर गोबर मिश्रित मिट्टी की हल्की परत चढ़ा दी जाती है ताकि बीज ठीक से ढ़क जाएं। तदुपरान्त पौधशाला की फब्बारे अथवा स्प्रिंकलर्स से हल्की सिंचाई कर दी जाती है। प्रायः 10 से 15 दिनों में इन बीजों में अंकुरण प्रांरभ हो जाती है तथा बीजों से अंकुरण का प्रतिशत लगभग 40ः तक रहता है। जब ये पौधे लगभग 40–45 दिनों के हो जाएं तो इन्हें मुख्य खेत में प्रतिरोपित कर दिया जाना चाहिए। नर्सरी अथवा पौधशाला में बीज बोने की जगह इन बीजों को पौलीथीन की थैलियों में डाल करके भी तैयार किया जा सकता है।

खेत की तैयारी

सतावर की खेती 24 माह से 40 माह की फसल के रूप में की जाती है इसलिए यह आवश्यक होता है कि प्रारंभ में खेत की अच्छी प्रकार से तैयारी की जाए। इसके लिए माह मई–जून में खेत की गहरी जुताई करके उसमें 2 टन केंचुआ खद अथवा चार टन कम्पोस्ट खाद के साथ–साथ 120 कि.ग्रा. प्रॉम जैविक खाद प्रति एकड़ की दर से खेत में मिला दी जानी चाहिए। यूं तो सतावर सीधे प्लेन खेत में भी लगाई जा सकती है परन्तु जड़ों के अच्छे विकास के लिए यह वांछित होता है कि खेत की जुताई करने तथा खाद मिला देने के उपरान्त खेत में मेड़ें बना दी जाएं। इसके लिए 60–60 सें.मी. की दूरी पर 9 इंच ऊँची मेड़ियां बना दी जाती हैं।

मुख्य खेत में पौधों की रोपाई

जब नर्सरी में पौध 40–45 दिन की हो जाती है तथा वह 4–5 इंच की ऊँचाई प्राप्त कर लेती है तो इन मेड़ियों पर 60–60 सें.मी. की दूरी पर चार–पांच इंच गहरे गड्ढों में पौध की रोपाई के समय भी। अर्थात् पूरे खेत में खाद डालने की बजाय केवल गड्ढे मे भी खाद डाली जा सकती है। पहले वर्ष के उपरान्त आगामी वर्षो में भी प्रतिवर्ष माह जून–जुलाई में 750 कि.ग्रा. केंचुआ खाद अथवा 1.5 टन कम्पोस्ट खाद तथा 60 कि.ग्रा. प्रॉम जैविक खाद प्रति एकड़ डालना उपयोगी रहता है।

आरोहण की व्यवस्था

क्योंकि सतावर एक लता है अतः इसके सही विकास के लिए आवश्यक है कि इसके लिए उपयुक्त आरोअण की व्यवस्था की जाए। इस कार्य हेतु यूं तो मचान जैसी व्यवस्था भी की जा सकती है परन्तु यह ज्यादा उपयुक्त रहता है यदि प्रत्येक पौधे के पास लकड़ी के सूखे डंठल अथवा बांस के डंडे गाड़ दिए जाएं ताकि सतावर की लताएं उन पर चढ़ कर सही विस्तार पा सकें। कई किसानों द्वारा इसे केवल फैंसिंग पर भी लगाया जाता है।

खरपतवार नियंत्रण तथा निंदाई–गुड़ाई की व्यवस्था

सतावर के पौधों को खरपतवार से मुक्त रखना आवश्यक होता है। इसके लिए यह उपयुक्त होता है कि आवश्यकता पड़ने पर नियमित अंतरालों पर हाथ निंदाई–गुड़ाई की जाए। इससे एक तरफ जहां खरपतवार पर नियंत्रण होता है वहीं हाथ से निंदाई–गुड़ाई करने से मिट्टी भी नर्म रहती है जिससे पौधों की जड़ों के प्रसार के लिए उपयुक्त वातावरण भी प्राप्त होता है।

सिंचाई की व्यवस्था

सतावर के पौधों को ज्यादा सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। यदि माह में एक बार सिंचाई की व्यवस्था हो सके तो ट्यूवर्स (जड़ों) का अच्छा विकास हो जाता है। सिंचाई फ्लड पद्धति का भी उपयोग किया जा सकता है जिसमें अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होगी। सिंचाई देते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि पानी पौधों के पास ज्यादा देर तक रूके नहीं। वैसे कम पानी अथवा बिना सिंचाई के अर्थात असिंचित फसल के रूप में भी सतावर की खेती की जा सकती है। हां! ऐसी स्थिति में उत्पादन का प्रभावित होना स्वभाविक है।

फसल का पकना अथवा फसल की परिपक्वता

प्रायः लगाने के 24 माह के उपरान्त सतावर की जड़ें खोदने के योग्य हो जाती हैं। किन्हीं किसानों

द्वारा इनकी 40 माह बाद भी खुदाई की जाती है।

जड़ों की खुदाई तथा उपज की प्राप्ति

24 से 40 माह की फसल हो जाने पर सतावर की जड़ों की खुदाई कर ली जाती है। खुदाई का उपयुक्त समय अप्रैल–मई माह का होता है जब पौधों पर लगे हुए बीज पक जाएं। ऐसी स्थिती में कुदाली की सहायता से सावधानीपूर्वक जड़ों को खोद लिया जाता है। खुदाई से पहले यदि खेत में हल्की सिंचाई देकर मिट्टी को थोड़ा नर्म बना लिया जाए तो फसल को उखाड़ना आसान हो जाता है।

जड़ों को उखाड़नें के उपरान्त उनके ऊपर का छिलका उतार लिया जाता है। ऐसा चीरा लगा करके भी किया जाता है। सतावर की जड़ों के ऊपर पाया जाने वाला छिलका ट्यूवर्स से अलग करना आवश्यक होता है। छिलका उतारने के लिए सतावर की कन्दों को पानी में हल्का उबालना पड़ता है तथा तदुपरान्त ठंडे पानी में थोड़ी देर रखने के उपरान्त छिलाई की जाती है। छीलने के उपरान्त इन्हें छाया में सुखा लिया जाता है तथा पूर्णतया सूख जाने के उपरान्त वायुरूद्ध बोरियों में पैक करके बिक्री हेतु प्रस्तुत कर दिया जाता है। कन्दों को उबालने, छिलाई पश्चात् सुखाने पर कन्द हल्का पीला रंग का हो जाता है।

कुल उत्पादन

प्रायः 24 माह की सतावर की फसल से प्रति एकड़ लगभग 25000 कि.ग्रा. गीली ट्यूबर्स प्राप्त होती है जोकि साफ करने तथा छीलने के उपरांत 2500 कि.ग्रा. (10 प्रतिशत) रह जाती हैं। इस प्रकार एक एकड़ की खेती से लगभग 25 क्विंटल सूखी जड़ों का उत्पादन प्राप्त होता है।

फसल से प्राप्तियां, व्यय तथा लाभ

यद्यपि सतावर की सूखी जड़ों की बिक्री दर संबंधित उत्पादन की गुणवता पर निर्भर करती है। वर्त्तमान में बनारस की मंडी में सतावर के सूखे जड़ों की कीमत 150–250 रूपये प्रति किलोग्राम है। निःसंदेह वर्त्तमान में सतावर एक अत्यधिक महत्वपूर्ण औषधीय महत्व का पौधा है जिसके उपयोगों को देखते हुए इसकी मांग के निरंतर बढ़ते जाने की संभावना है। कम उपजाऊ ज़मीनों तथा कम पानी की उपलब्धता में भी उपजाए जा सकने जैसी इसकी विशेषताओं के कारण व्यवसायिक स्तर पर इसकी खेती काफी उपयोगी है। किन्हीं अन्य पौधों के साथ इसे इंटरक्रापिंग में तथा कई अन्य पौधे इसके बीच में उगाए जा सकने के कारण इसकी खेती आर्थिक रूप से भी काफी अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

सतावर की खेती से संबंधित व्यय एवं प्राप्तियां/एकड़ में

(क)	**व्यय**	
1.	खेती की तैयारी पर व्यय	2500.00
2.	बीज की लागत	4000.00
3.	खाद आदि की लागत	10000.00
4.	पौधशाला तैयार करने पर व्यय	1000.00
5.	मेड़ियां बनाने तथा पौधों की ट्रांसप्लांटिग पर व्यय	2000.00
6.	खरपतवार निंयत्रण पर व्यय	3000.00
7.	सिंचाई व्यवस्था पर व्यय	5000.00
8.	आरोहण व्यवस्था पर व्यय	3000.00
9.	दूसरे साल में फसल सुरक्षा पर व्यय	2500.00
10.	कंदों की खुदाई तथा धुलाई, उबालने, छिलाई आदि पर व्यय	50000.00
11.	कंदो को सुखाने तथा पैकिंग आदि पर व्यय	10000.00
	कुल व्यय	**84,000.00**
(ख)	**कुल प्राप्तियां**	
(25	**क्विंटल सूखे ट्यूबर्स 10000 रू. प्रति क्विं. की दर से)**	**2,50,000.00**
(ग)	**शुद्ध लाभ 2,50,000.00–84,000.00**	**1,66,000.00**

'उपरोक्त गणनाएं सामान्य सतावर के संदर्भ में हैं। यदि इसकी बजाय नेपाली अथवा पीली सतावर की खेती की जाए तो लाभ की मात्रा काफी बढ़ जाएगी।

सर्पगंधा *(Rauwolfia serpentine)*

सर्पगंधा (राउल्फिया सर्पेन्टीना) की जड़ों का भारतीय चिकित्सा पद्धति में बहुतायत से प्रयोग होता आ रहा है, परन्तु वर्तमान औषधीय पद्धति में भी काफी मात्रा में इसका प्रयोग हो रहा है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति में जड़ों का प्रयोग विभिन्न प्रकार की बीमारियों, जैसे मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों, मिरगी कंपन इत्यादि, आंत की गड़बड़ी तथा प्रसव आदि विभिन्न बीमारियों के उपचार में बहुतायत से उपयोग होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में सर्पगंधा की जड़ों का प्रयोग उच्चरक्त चाप तथा अनिद्रा की औषधियाँ बनाने में प्रयोग होता है।

भूमि तथा जलवायु

इसकी खेती विभिन्न मृदा किस्मों जैसे कि बलुवर, बलुवर दोमट तथा भारी जमीनों में हो रही है। इसे बहुत हल्की बलुवर जमीन जिसमें जीवांश पदार्थ की मात्रा कम हो नहीं उगाना चाहिये। यह पौधा अम्लीय तथा क्षारीय दोनों प्रकार की मिट्टियों में आसानी से उगाया जा सकता है। जिस भूमि का पी. एच. 8.5 से ज्यादा हो वह इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं होती है।

सर्पगंधा विभिन्न प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है, किन्तु इसकी अधिक उपज गर्म तथा अधिक आर्दता वाली परिस्थितियों में मिलती है। प्राकृतिक रूप से सर्पगंधा पौधों के नीचे छाया में उगता है। लेकिन खुली जमीन तथा हल्की छाया में भी इसकी खेती की जा सकती है। जहाँ का तापक्रम 10 से 38 डिग्री सेन्टीग्रेड के मध्य रहता है, वे स्थान इसकी खेती के लिये उपयुक्त हैं।

खेत की तैयारी

गर्मियों में एक गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिये। खेत से पुराने पेड़ों की जड़ो या अन्य झाड़ियों आदि को खेत से निकाल देते हैं। पहली बरसात के तुरन्त बाद 10–12 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद को खेत में मिलाकर खेत की पुनः जुताई कर देनी चाहिये। लगाने के पहले भी दो हल्की जुताईयाँ करके उसमें पाटा लगा देते हैं। जिससे खेत में ढेले न रह जाय। खेत में सुविधानुसार सिंचाई की नालियाँ भी बना लेना चाहिए।

पौध तैयार करना

विभिन्न विधियों जैसे सर्पगंधा के पौध बीज, तने तथा जड़ की कटिंग व जड़ों के टूंठ लगाकर तैयार किये जा सकते हैं।

बीज द्वारा : इस विधि से सामान्यतः पौधा नहीं तैयार करते हैं, क्योंकि इसके बीजों का जमाव बहुत ही कम (20 से 25 प्रतिशत) होता है। यदि बीज के द्वारा ही तैयार करना है तो बिल्कुल ताजे बीजों का प्रयोग करना चाहिए। तीन महीना के भीतर तैयार बीज का अंकुरण प्रतिशत ठीक रहता है।

नर्सरी तैयार करना : इस विधि में करीब 5 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई के पूर्व बीजों को 5 प्रतिशत नमक के घोल में डाल देते हैं। जिससे खराब बीज ऊपर तैरने लगते हैं। इस विधि से उपचार करने पर न केवल अंकुरण अधिक होता परन्तु नर्सरी में होने वाली डैम्पिंग आफ बीमारी से भी बचाव होता है। नर्सरी में बीजों को बोने के पहले रात भर पानी भिगो देते हैं।

उत्तर भारत में मई के महीने में बीजों को नर्सरी में बोते हैं। जुलाई के पहले हफ्ते तक पौधे खेत में लगाने योग्य तैयार हो जाते हैं। दक्षिण भारत में बरसात शुरू हो जाने पर नर्सरी में बीजों को बोते हैं। करीब 6 सप्ताह बाद पौधे खेत में लगाने योग्य हो जाते हैं। प्रति हेक्टेयर बीज द्वारा पौधे तैयार करने के लिये 500 वर्गमीटर भूमि नर्सरी के लिये पर्याप्त होती है।

जड़ों की कलम द्वारा : ऐसे पौध की जड़े जिसमें एल्कलायड की मात्रा अधिक हो उनका चुनाव पौध लगाने के लिये करते हैं। इससे अधिक एल्कलायड देने वाले पौधे प्राप्त होंगे। पौध तैयार करने के लिए 7.5 से 10 से०मी० लम्बी जड़ें काटते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जड़ों की मोटाई 12.5 मि.मी. से अधिक न हो तथा प्रत्येक टुकड़े में 2 गाँठें हों। इस प्रकार की जड़ों को करीब 5 से.मी. गहराई के नालियों में लगाकर अच्छी प्रकार से ढ़क देते हैं। इस विधि से फसल लगाने में करीब 100 कि.ग्रा. ताजी जड़ों के टुकड़ों की जरूरत होती है।

रोपाई

बरसात का समय इसकी रोपाई के लिये उपयुक्त होता है। रोपाई के समय पौध की ऊंचाई 7.5 से 12 से.मी. के बीच होना चाहिए। नर्सरी से पौध उखाड़ते समय इस बात का ध्यान रहे कि उसकी जड़ें टूटने न पाये। उखाड़ने के बाद पौधों को भीगे बोरे या हरी पत्तियों से ढ़ककर खेत में सीधे ले जाकर लगा देना चाहिये। लाइन से लाइन 60 से.मी. की दूरी तथा पौध से पौध की दूरी 30 से.मी. होनी चाहिये।

सिंचाई

यद्यपि सर्पगंधा असिंचित अवस्था में पैदा किया जा सकता है लेकिन पानी की कमी की वजह से पैदावार कम हो जाती है। यदि सिंचित अवस्था में इसकी खेती की जा रही है तो इसे गर्मियों के अलावा एक माह में एक बार तथा गर्मियों में माह में दो बार सिंचाई करते हैं। यदि पौध लगाने के बाद बरसात नहीं होती है तो रोजाना हल्की सिंचाई पौध अच्छी तरह लगने तक करते हैं।

खाद एवं उर्वरक

सर्पगंधा का पौधा पूरे वर्ष जमीन में रहने की वजह से काफी मात्रा में पोषक तत्व जमीन से ले लेता है। अतः एक निश्चित अंतराल पर गोबर की खाद का तथा उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। खाद की मात्रा जमीन की किस्म तथा सिंचित अवस्था के ऊपर निर्भर करती है। प्रति हेक्टेयर 10 टन गोबर की खाद एवं नेत्रजन, फास्फोरस व पोटाश हर एक की 30 कि.ग्रा. की दर से बुवाई के पूर्व खेत में मिला देना चाहिए। इसके बाद 25 कि.ग्रा. नेत्रजन दो बार पौध अच्छी तरह लगने के बाद अगस्त–सितम्बर में तथा फरवरी–मार्च में देते हैं। बाद के दूसरे तथा तीसरे वर्षों में भी उपरोक्त दिये गये उर्वरकों की मात्रा प्रयोग करते हैं।

निराई–गुड़ाई

शुरू में पौधे की वृद्धि कम होने के कारण खेत में खर–पतवार काफी मात्रा में हो जाते हैं जिसकी वजह से पौधे की बढ़वार और भी कम हो जाती है। यदि इस अवस्था में खर–पतवार नियंत्रित नहीं किये गये तो ये सर्पगंधा के पौधे को ढ़क लेते हैं जिससे पौधें मर भी जाते हैं। अतः लगाने के 15–20 दिन के बाद खुरपी से निराई कर देनी चाहिये तत्पश्चात साल में दो बार और निराई गुड़ाई करना चाहिए।

फूलों की तुड़ाई

यदि सर्पगंधा की खेती इसकी जड़ों के उत्पादन के लिए की जा रही है तो फूल निकलने पर उनकी तुड़ाई कर देनी चाहिए नहीं तो बीज बनेंगे और जड़ों की उपज कम हो जायेगी।

बीज इकट्ठा करनाः यदि सर्पगंधा के बीजों की जरूरत है तो खेत के किसी एक कोने में पौधों को छोड़ देते हैं जिससे कि उसमें बीज आ जायें। पौधों में जुलाई से फरवरी के मध्य बीज आते हैं। पके बीज के ऊपर बैंगनी व काले रंग का गूदा होता है बीजों को बीच–बीच में इकट्ठा करते रहते हैं, क्योंकि बीज एक साथ तैयार नहीं होते हैं। पके हुये बीजों के ऊपर का गुदा पानी में धोकर निकाल देते हैं। तत्पश्चात उन्हें साये में सुखाकर हवा बन्द डिब्बों में भरकर रख देते हैं।

जड़ों की खुदाई, सुखाना तथा भंडारण: सिंचित अवस्था में जड़ें 2 से 3 वर्ष की उम्र में खुदाई के लिये तैयार हो जाती है। इनकी खुदाई का उचित समय दिसम्बर माह है क्योंकि इस समय पौधा सुसुप्ता अवस्था में रहता है तथा पत्तियाँ भी कम होती है। इसकी जड़ें काफी गहराई तक जाती है, इन्हें अच्छी तरह खोदकर निकालना चाहिये। उसके बाद पानी में जड़ें धोकर छाया में सुखाना चाहिये। तत्पश्चात जड़ो को जूट के बोरो में भरकर बाजार हेतु रखते हैं।

उपज

इस प्रकार किये गये प्रत्येक पौधे से करीब 100 ग्राम से 400 ग्राम तक जड़ों से प्राप्त होती है। परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि यदि 60x30 से.मी. में पौधे लगाये गये हैं तो करीब 1175 कि.ग्रा. तक सूखी जड़ें प्राप्त होती है। औसतन 10 कुन्तल जड़ें प्राप्त होती है।

सर्पगंधा की खेती पर होने वाले आय–व्यय का विवरण (प्रति एकड़ 30 माह की फसल के अनुसार)

(क)	व्यय	
1.	खेती की तैयारी पर व्यय	3,000.00
2.	खाद एवं कीटनाशकों पर व्यय	5,000.00
3.	बीज की लागत (तीन कि.ग्रा. बीज 5000 रू.प्रति कि.ग्रा. की दर से)	15,000.00
4.	नर्सरी तैयार करने की लागत	1,000.00
5.	ट्रांसप्लांटिंग की लागत	2,000.00
6.	खरपतवार नियंत्रण तथा निंदाई गुड़ाई की लागत	3,500.00
7.	बीजों की चुनाई पर व्यय	3,000.00
8.	सिंचाई पर व्यय	3,000.00
9.	30 माह तक फसल की देखभाल पर व्यय	5,000.00
10.	फसल उखाड़ने तथा सुखाने आदि पर व्यय	3,000.00
11.	पैकिंग तथा ट्रांसपोर्टेशन आदि पर व्यय	5,000.00
	कुल योग	**48,500.00**
(ख)	**प्राप्तियां**	
1.	सूखी जड़ों की बिक्री से प्राप्तियां (8 क्विंटल जड़ें 250/– प्रति कि.ग्रा. की दर से)	2,00,000.00
2.	बीजों की बिक्री से प्राप्तियां(25 कि.ग्रा. बीज, 1500 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से बिक्री)	37,500.00
	कुल योग	**2,37,500.00**

शुद्ध लाभ = 2,37,500 – 48,500 = 1,89,000.00

वर्त्तमान में सर्पगंधा की खेती व्यवसायिक रूप से काफी अधिक लाभकारी है, जिसके प्रमुख कारण हैं – राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका बढ़ता जा रहा बाजार जिसमें अभी काफी समय तक संतृप्ता (सेचुरेशन) आने की संभावना नहीं है, दूसरे इससे प्राप्त होने वाले लाभ की मात्रा भी काफी अधिक है। तीसरा कारण यह भी है कि हालांकि स्वयं में तो यह फसल 30 माह अथवा अढ़ाई वर्ष की अवधि की है परन्तु इसके बीच में कई अंतर्वर्त्तीय फसलें लेकर फसल पर होने वाले अन्य सामान्य खर्चों की पूर्त्ति की जा सकती है। चौथे, इसकी खेती प्रारंभ करने में प्रारंभिक कठिनाई भी ज्यादा नहीं है। इस प्रकार सर्पगंधा एक ऐसा औषधीय पौधा है, जिसकी खेती किसानों के लिए लाभकारी है। सर्पगंधा के सूखे जड़ों की अभी बाजार दर 300–350/– किलोग्राम है।

स्टीविया *(Stevia rebaudiana)*

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक शक्कर मनुष्य के भोजन का एक अभिन्न हिस्सा रही है गन्ना और चुकंदर लम्बे समय से शक्कर प्राप्ति का एक प्रमुख स्त्रोत हैं। हालाँकि इन दोनों ही स्त्रोतों से प्राप्त शक्कर में मिठास का गुण तो होता है लेकिन मधुमेह से पीड़ितों को इनका उपयोग न करने की सलाह दी जाती है। ऐसे लोगों के लिये स्टीविया से प्राप्त शक्कर एक बेहतर विकल्प हो सकती है।

स्टीविया के पत्तों मे मिठास उत्पन्न करने वाले तत्व होते हैं जिन्हें स्टीवियोसाइड, एवं इल्कोसाइड के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा इनमें 6 और तत्व होते है जिनमें इन्सुलिन को संतुलित करने का गुण होता है। इसकी मिठास टेवल सुगर से ढाई सौ गुना एवं सुक्रोस से तीन सौ गुना अधिक होती है। इसमें कृत्रिम मिठास उत्पन्न करने वाले अन्य कई पदार्थो का विकल्प बनने की अच्छी संभावनाएं हैं। अभी तक स्टीविया उत्पादों के उपयोग से मनुष्य पर किसी भी प्रकार का विपरीत प्रभाव पड़ने की शिकायत नहीं पाई है। यह कैलोरी और झागहीन होता है तथा पकाने पर डार्क भी नहीं पड़ता। स्टीवियोसाइड पत्ती में उनके वजन के अनुसार 3 से 10 प्रतिशत तक होता है स्टीवियोसाइड में से ग्लूकोसाइड समूह को पृथक कर स्टीविऑल उत्पादित किया जाता है। इसके अलावा गिबरेला फ्यूजीकरोइ नामक फफुंद से गिवरैलिक एसिड के उत्पादन में भी इसका उपयोग होता है।

उत्पत्ति स्थान एवं वितरण

स्टीविया (स्टीविया रिवौडिआना) मूलतः दक्षिण पश्चिम पैरागवे का है और इसका विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, जापान, कोरिया, ताइवान एवं दक्षिण पश्चिम एशिया तक है। जापान एवं कोरिया में सामन्यतः इसे का–हे–ए (मीठी झाड़ी) के नाम से जाना जाता है।

वनस्पति शास्त्र

स्टीविया रिबौडिआना (यूपेटोरियम रिबौडिआना) एस्टरासिएइ (Asterscese) का सदस्य है। इसका

पौधा पतला झाड़ीनुमा होता है और इसमें डंठल नहीं होते। इसके पुष्प छोटे और सफेद तथा अनियिमित क्रम में होते हैं।

जलवायु

यह एक मध्यम आर्द्रता का सबट्रॉपिकल पौधा होता है जो 11–41 डिग्री से. तापमान पर उगया जा सकता है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिये 31 डिग्री से. वार्षिक तापमान एवं 140 से.मी. वार्षिक वर्षा उपयुक्त पाई गई है। उचित प्रकाश एवं उष्ण दशाओं में इसका अंकुरण अच्छा होता है। इस प्रकार लांग ग्रोइंग सीजन, न्यूनतम पाला, उच्च प्रकाश और उष्ण ताप की अवस्था स्टीविया के पत्तों के उच्च उत्पादन में सहयक होती हैं।

मिट्टी

पानी की विपुलता के साथ दलदली रेतीली भूमि इसके लिये सर्वाधिक उपयुक्त होती है इसकी अच्छी बढ़त के लिए 6.5–7.5 पी.एच. की अम्लीय से उदासीन भूमि उपयुक्त होती है। इसकी कृषि के लिये क्षारीय भूमि का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह पौधा लवण की उपस्थिति सहन नहीं करता।

फसलोत्पादन

इस पौधे की खेती के लिये यद्यपि बीजों के अंकुरण और तनों के रोपण, दोनों तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन चूँकि बीजों का अंकुरण बहुत कम होता है इसलिए सामान्यतः रोपण की विधि अधिक उपयुक्त कही जा सकती है। रोपण के लिये पत्तों के अक्ष से 15 से.मी. लम्बाई का तना काटना होता है। इस कार्य के लिये चालू वर्ष के पौधों से बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं। पैकोब्यूट्राजोल (Pacvobutrazol) के साथ 100 पीपीएम की दर से उपचारित करने पर जड़ों के शीघ्र ही जमने में सहायता मिलती है। इस उपचारण का अधिक प्रभाव उस समय देखने को मिलता है जब कटिंग्स का रोपण फरवरी–मार्च माह में किया जाता है।

प्रजातियॉ

अभी तक इस फसल की किसी अन्य नाम से प्रजाति उपलब्ध नहीं है।

रोपण का तरीका

स्टीविया को सामान्यतः मेड़ों में रोपा जाता है जिसमें कतार की दूरी 22 से.मी. के मध्य होती है। पौधों के अच्छी तरह जमने के लिये कटिंग्स के रोपण के तत्काल बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिये।

पोषक तत्वों का प्रबंधन

रोपण के पश्चात् खेतों को कार्बनिक खाद जैसे एफ वाय एम 50 क्विं. की दर से देना चाहिये और अच्छी तरह जुताई करनी चाहिये। अच्छी वृद्धि और ज्यादा पत्तों की प्राप्ति के लिये उर्वरक की खुराक 60:30:45 किग्रा. एनपीके प्रति हेक्टेयर देनी चाहिये। सूक्ष्म तत्वों जैसे बोरान और मैग्नीज के बुरकाव से भी पत्ते के उत्पाद में बढ़त देखी गई है।

सिचाई प्रबंधन

इसकी खेती के लिये पानी की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है और ग्रीष्म ऋतु में नियमित सिंचाई जरूरी होती है। ग्रीष्म ऋतु में फसल की हर 8 दिन के अंतराल में सिंचाई करनी होती है।

फसलों की सुरक्षा

यह फसल पर्याप्त रूप से सक्षम होती है। इस कारण इसमें विभिन्न प्रकार के कीटों और बीमारियों का आक्रमण नहीं हो पाता। लेकिन कभी–कभी इसमे बोरान की कमी का प्रभाव देखने को मिलता है जिससे पत्तों में धब्बे आ जाते हैं। छः प्रतिशत की दर से बोरेक्स देकर इस समस्या से निजात पाई जा सकती है।

पुष्पों की छंटाई

स्टेविओसाइड चूँकि पत्तों में होता है इसलिये पौधों की अच्छी बढ़त और प्रकाश संश्लेषकों के अधिक संग्रहण की सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से इसके पुष्पों की छंटाई की जाती है। पुष्पों की छंटाई पौधों के रोपण के 30, 45, 60, 75 एवं 85 दिनों के पश्चात् की जाती है। रटून फसल होने की स्थिति में सामान्यतः पहली कटाई के 40 दिनों के पश्चात् पुष्प आते हैं अतः ऐसी स्थिति में छंटाई 40 और 55 वें दिन की जाती है।

कटाई एवं उपज

इसकी फसल रोपण के तीन माह पश्चात् पहली कटाई की अवस्था में आ जाती है। पुनरोत्पादन को सहूलियत प्रदान करने के लिये पौधों को जमीन से 5–8 से.मी. ऊँचाई पर काटना चाहिये। नब्बे दिन के अंतराल पर इसे पुनः काटा जा सकता है। एक वर्ष में इसकी चार बार कटाई की जा सकती है। इसकमें प्रति हेक्टेयर प्रति फसल लगभग 3 से 3.5 टन पत्ते प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार एक हेक्टेयर क्षेत्र से प्रति वर्ष लगभग 10 से 12 टन पत्ते प्राप्त किये जा सकते है।

काढ़े का निस्सारण

इस प्रक्रिया के अंतर्गत कच्चे माल का जल निस्सारण किया जाता है। प्रक्रियाकरण के पूर्व पत्तों के 0.3–0.9 मिमी. के टुकड़े किये जाते है और इन्हें एसीटोन के साथ 58° से. ताप पर 5 घंटा तक शोधित किया जाता है। इसके पश्चात् 25–30° से॰ ताप पर निर्वात के द्वारा मिश्रण से एसीटोन को पृथक कर दिया जाता है निस्सारण 40–50 डिग्री ताप तक 2 से 4 घंटों तक जारी रखा जाता है। इसके पश्चात् प्राप्त सामग्री को निथारकर और सारकृत कर कृत्रिम मिठास प्रदान करने वाला तत्व प्राप्त किया जाता है जिसका औषधि और अन्य कार्यो में उपयोग किया जाता है।

गत वर्षो में स्टीविया चीनी (स्टीवियोसाईड एवं ग्लूकोसाईड) निष्कर्षण हेतु कलकत्ता, दिल्ली, मुम्बई एवं हिमाचल प्रदेश में फैक्ट्री हैं जिसमें स्टीविया के सुखे पत्तों का क्रय दर लगभग 100/– किलोग्राम। राज्य में उँची जमीन के लिए उपयुक्त गैर पारस्परिक फसल है। इसकी खेती से लगभग एक लाख रूपये एकड़ प्रथा पपीता की अन्तवर्ती खेती स्टीविया के साथ करने पर लगभग 50,000/– रूपये/ एकड़ अतिरिक्त आय संभव है।

स्टीविया की खेती पर अनुमानित व्यय तथा प्राप्तियाँ (प्रति एकड़)

(क) कुल लागत		प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष
1	भूमि की तैयारी तथा बेड्स निर्माण	5000.00	.	.	.	.
2	ड्रिप इरीगेशन पर व्यय	60000.00	.	.	.	.
3	पौध सामग्री की लागत (बीज/कलम					
	से तैयार पौधों हेतु@4.00 पौधा	120000.00	.	.	.	
4	पौधों की रोपाई पर व्यय	2000.00	.	.	.	.
5	खाद तथा टॉनिक आदि	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00
6	निंदाई–गुड़ाई की लागत	3500.00	3500.00	3500.00	3500.00	3500.00
7	पानी तथा फसल की देखभाल	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00
8	शेड व्यवस्था, पपीता अथवा अन्य पौधों के रोपण					
	एवं रख–रखाव पर व्यय)	5000.00	4000.00	4000.00	4000.00	4000.00
9	फसल कटाई तथा सुखाना	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00
10	पैकिंग तथा ट्रांसपोर्टेशन आदि	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00
11	अन्य तथा आकस्मिक व्यय	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00	5000.00
कुल योग –		**220500**	**27500**	**27500**	**27500**	**27500**
ख. प्राप्तियां						
फसल की बिक्री से प्राप्तियां (100 रू. प्रति कि.ग्रा. की दर से)उत्पादन		1.2 टन सूखे पत्ते	1.5 टन सूखे पत्ते	1.5 टन सूखे पत्ते	1.5 टन सूखे पत्ते	1.5 टन सूखे पत्ते
कुल प्राप्तियाँ		**120000**	**180000**	**180000**	**180000**	**180000**
ग. लाभ		**100500**	**152500**	**152500**	**152500**	**152500**

स्टीविया की खेती पर प्रथम वर्ष में व्यय की अधिकता के कारण आय नहीं है। पपीता की अन्तर्वर्त्ती खेती से प्राप्त वर्ष लगभग 80,000/–रूपये की आय संभावित है।

तुलसी

तुलसी के अनेक नाम हैं। सुलभा, ग्राम्या, पुरसा, बहुमंजरी तथा होली बेसिल के नाम से जाने वाले लेमिएसी कुल के पौधे की विश्व में लगभग 150 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। इस पौधे की मूल प्रकृति एक जैसे हैं किंतु इनकी रासायनिक संरचनाओं में काफी भिन्नता हे। धार्मिक महत्त्व के इस पौध को गैरपारम्परिक रूप में वाणिज्यिक कृषि के लिए अपनाया जा रहा है।

तुलसी की प्रजातियाँ निम्नानुसार हैं :

1. ओसियम बेसीलिकम (O. Basilicum) अजंधिका अथवा स्वीट फ्रेंच बेसिल अथवा बोवई तुलसी
2. ओसिमम किलिमण्डस्क्रिकम (O. Kilimandschricum)
3. ओसिमम केनम / ओसिमम अमेरिकेनम (O. Americanum) काली तुलसी
4. ओसिमम ग्रेटिसियम (O. Grattisimum) बन तुलसी या राम तुलसी
5. ओसिमम विरडी (O. Virdi) जंगली तुलसी
6. ओसिमम सैंकटम (O. Sanctum)

श्री तुलसी या श्यामा तुलसी उपर्युक्त में से प्रथम पाँच फ्रेंच बेसिल की श्रेणी में हैं जबकि अंतिम को होली बेसिल (Holi Basil) में रखा गया है। होली तुलसी का उपयोग औषधीय के से सुगंधीय है जबकि फेच बेसिल के मुख्यतया सुगंधीय उपयोग हैं।

सगंध उड़नशील के विभिन्न रसायनिक संगठन के कारण बाजार में इनके तेल की कीमत अलग–अलग हैं। खेती करने में प्रजाति का ज्ञान रहने से इसकी कीमत अधिक मिल सकती है। विश्व बाजार में विभिन्न प्रजाति के तेल की कीमत 2000 / – से 8000 / – किलो हैं।

तुलसी की ओसिमम बेसीलीकम प्रजाति को तेल उत्पादन के लिए उगाया जाता है। तुलसी की इस प्रजाति की भारत में बड़े पैमाने पर खेती होती है। उत्तर प्रदेश में बरेली, बदायूँ, मुरादाबाद और

सीतापुर जिलों में इसकी खेती की जाती है। इसका प्रयोग परफ्यूम व कास्मेटिक इन्डस्ट्रीज में अधिक होता है । अपने बिहार राज्य में इसकी खेती लगभग 400 हे0 में हो रही है।

मृदा व जलवायु

इसकी खेती, कम उपजाऊ जमीन जिसमें पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध हो, अच्छी होती है। बलुई दोमट जमीन इसके लिए बहुत उपयुक्त होती है। इसके लिए उष्ण कटिबंधीय एवम् उपोष्ण कटिबंधीय दोनों तरह की जलवायु उपयुक्त होती है।

जमीन की तैयारी

जमीन की तैयारी ठीक तरह से कर लेनी चाहिए। जमीन जून के दूसरे सप्ताह तक तैयार हो जानी चाहिए।

बुवाई/रोपाई

इसकी खेती बीज द्वारा होती है लेकिन खेत में बीज की बुवाई सीधे नहीं करनी चाहिए। पहले इसकी नर्सरी तैयार करनी चाहिए बाद में उसकी रोपाई करनी चाहिए।

पौध तैयार करना

जमीन की 15–20 से॰ मी॰ गहरी खुदाई कर के खरपतवार आदि निकाल कर तैयार कर लेना चाहिए। 15 टन प्रति हे० की दर से गोबर की सड़ी खाद अच्छी तरह मिला देना चाहिए। 1 मी॰ x 1 मी॰ आकार की जमीन सतह से उभरी हुयी क्यारियां बना कर 20 कि० फास्फोरस तथा इतना ही पोटाश प्रति है, की दर से मिला देना चाहिए। 750 ग्रा॰– 1 किग्रा॰ बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। बीज की बुवाई 1:10 के अनुपात में रेत या बालू मिला कर 8–10 से॰ मी॰ की दूरी पर पंक्तियॉ में करनी चाहिए। बीज की गहराई अधिक नहीं होनी चाहिए। जमाव के 15–20 दिन बाद 20 कि॰/हे॰ की दर से नत्राजन डालना उपयोगी होता है। पांच–छह सप्ताह में पौध रोपाई हेतु तैयार हो जाती है।

रोपाई

सूखे मौसम में रोपाई हमेशा दोपहर के बाद करनी चाहिए। रोपाई के बाद खेत को सिंचाई तुरन्त कर देनी चाहिए। बादल या हल्की वर्षा वाले दिन इसकी रोपाई के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। इसकी

रोपाई लाइन से लाइन 60 से॰ मी॰ तथा पौधे से पौधे 30 से॰ मी॰ की दूरी पर करनी चाहिए।

सिंचाई

अगर वर्षा के दिनों में वर्षा होती रही तो सितम्बर तक इसके लिए सिंचाई की कोई आवश्यकता नही होती है उसके बाद सिंचाई की आवश्यकता हो सकती है।

खर पतवार नियंत्रण

इसकी पहली निराई–गुड़ाई रोपाई के एक माह बाद करनी चाहिए। दूसरी निराई–गुड़ाई पहली निराई के 3–4 सप्ताह बाद करनी चाहिए। बड़े क्षेत्रा में गुड़ाई ट्रेक्टर से की जा सकती है।

उर्वरक

इसके लिए 15 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद जमीन में डालना चाहिए। इसके अलावा 75–80 कि॰ ग्रा॰ नत्रजन 40–40 कि॰ ग्रा॰ फास्फोरस व पोटाश की आवश्यकता होती है। रोपाई से पहले एक तिहाई नत्रजन तथा फास्फोरस व पोटास की पूरी मात्रा खेत में डालकर जमीन में मिला देना चाहिए। शेष नत्रजन की मात्रा दो बार में खड़ी फसल में डालना चाहिए।

कटाई

जब पौधे में पूरी तरह से फुल आ जाये तथा नीचे के पत्ते पीले पड़ने लगे तो इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। रोपाई के 10–12 सप्ताह के बाद यह कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

आसवन

तुलसी का तेल पूरे पौधे के आसवन से प्राप्त होता है। इसका आसवन, जल तथा वाष्प आसवन, दोनों विधि से किया जा सकता है। लेकिन वाष्प आसवन सबसे ज्यादा उपयुक्त होता है। कटाई के बाद 4–5 घंटे छोड़ देना चाहिए। इससे आसवन में सुविधा होती है।

पैदावार

इसके फसल की औसत पैदावार 20–25 टन प्रति हेक्टेयर तथा तेल की पैदावार 80–100 कि॰ ग्रा॰ हेक्टेयर तक होता है।

तुलसी की खेती पर होने वाले आय तथा व्यय का विवरण (प्रति एकड़)

(क)	लागत	
क्र॰	विवरण	व्यय प्रति एकड़ (रूपये)
1.	खेत तैयार करने की लागत	2000
2.	खाद आदि की लागत	4000
3.	नर्सरी तैयार करने पर खर्च	500
4.	बीज की कीमत	500
5.	मुख्य खेत में पौध की ट्रांसप्लांटिंग पर व्यय	2500
6.	निंदाई–गुड़ाई की लागत	1000
7.	भू–टॉनिकों की लागत	1000
8.	सिंचाई व्यवस्था पर व्यय	2000
9.	फसल कटाई, छंटाई तथा सुखाने आदि पर व्यय	3000
10.	अन्य व्यय (पैकिंग, ट्रांसपोर्टेशन आदि सहित)	4000
11.	आसवन पर व्यय	5000
	कुल योग–	**26,000.00**
(ख)	**प्राप्तियां**	
	बेसिल/तुलसी तेल से आय (60 किलो ग्राम x1000.00 किलो)	**60,000.00**
₹	**शुद्ध लाभ = रू0 60,000–26,000 =**	**34,000.00**

खस

वेटिवर (Vetiveria Zizanioides) Nash या खस का उद्‌भव स्थान भारत पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका एवं मलेशिया माना जाता है। तमिल भाषा में "Vetiveru" का शाब्दिक अर्थ "Root that dug up" है। "Zizanioides" का अर्थ "By the river side" है, जो स्पष्टतः नदी किनारे धाराओं के अगल–बगल पैदा होने के मूल स्थान को इंगित करता है। खस कड़ी प्रवृत्ति का घास है जो सूखे की स्थिति एवं जल–जमाव दोनों को बर्दास्त कर लेता है। इसकी खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं जैसे ऊसर भूमि, जलमग्न भूमि, रेलवे लाईन के पास की भूमि, क्षारीय मृदाऐं, उबड़–खाबड़, गड्‌ढेयुक्त क्षेत्र एवं बलुई भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है। वैसी भूमि जिसमें अन्य महत्त्वपूर्ण फसलों का उत्पादन नहीं किया जा सकता है वहाँ पर खस का उत्पादन कर भूमि का उपयोग एवं उसकी जड़ों से उच्च गुणवत्ता का तेल (Essential Oil) प्राप्त किया जा सकता है। समस्याग्रस्त मृदाओं में खस की खेती की संस्तुति की जाती है ताकि बेकार पड़े जमीन का सदुपयोग किया जा सके। प्राचीन काल से इसके जड़ों का उपयोग तेल निकालने, चटाइयाँ बनाने एवं औषधीय उपयोग होता रहा है। इसकी जड़ों से बनी गई चटाईयों को गर्मी के मौसम में दरवाजे पर लटका कर पानी का छिड़काव किया जाता है, जिससे चटाई से होकर गुजरने वाली हवाएं खुशबूदार हो जाती हैं।

वर्त्तमान में हैती, इण्डोनेशिया, ग्वाटेमाला, भारत, रियूनियन द्वीप, चीन एवं ब्राजील खस के मुख्य उत्पादक देश हैं। खस उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में उगने वाला पौधा है। दक्षिण भारतीय राज्यों में खस के जड़ों की उत्पादन क्षमता ज्यादा है, लेकिन इस निकले तेल की कीमत कम मिलती है। उत्तर भारत में उगने वाले खस के जड़ों की गुणवत्ता काफी अच्छी होती है, तथा कीमत ज्यादा मिलती है। बिहार राज्य में लगभग 100 हे० में खस की खेती मधुबनी, सिवान, वैशाली एवं भागलपुर जिले में की जा रही है। उत्तर भारत से उत्पादित जड़ों से तेल 14 से 18 घंटा में आसवन विधि द्वारा निकाला जा रहा है, जबकि दक्षिण भारत में उत्पादित खस की जड़ों से 60–70 घंटा में तेल निकाला जाता है। उत्तर भारत से उत्पादित तेल की वर्त्तमान कीमत लगभग 10000/– से 18000/– रूपये प्रति किलोग्राम मिल

सकती है। विश्व बाजार में खस तेल की वर्त्तमान की लगभग 25000/– रूपये किलोग्राम है।

मृदा एवं जलवायु :

भारी एवं मध्यम श्रेणी की मृदाऐं जिसमें पोषक तत्त्वों की प्रचूर मात्रा हो एवं जलस्तर ऊँचा हो खस की सफलतापूर्वक खेती की जा सकती है। मध्यम विन्यास वाली मृदाओं में जड़ों की अच्छी वृद्धि होती है किंतु चिकनी मृदाओं में जड़ों की खुदाई कठिन कार्य है। बलुई एवं बलुई दोमट मृदा में जड़ों की खुदाई पर अपेक्षाकृत कम खर्च आता है तथा जड़ें लम्बी गहराई तक जाती है।

खस गर्म एवं तर जलवायु में अच्छी पनपती है। पहाड़ी इलाकों को छोड़कर अन्य सभी भागों में उपजाया जा सकता है। छायादार स्थानों में जड़ों की वृद्धि अधिक नहीं होती है।

खेत की तैयारी

खस का पौधा कठोर प्रवृत्ति का होने के कारण मामूली देखभाल एवं मृदा की तैयारी कर लगाया जा सकता है। भूमि में मौसमी खरपतवारों का प्रकोप नहीं हो। खरपतवारों एवं जड़ों के अवशेषों को हटाने हेतु 2–3 गहरी जुताई की आवश्यकता होती है।

प्रसारण

उत्तर भारत में खस का प्रसारण 6–12 माह के मूढ़ों से किया जाना चाहिए। इन मूढ़ों को 30–40 से. मी. ऊपर से काट लिया जाता है। बनाई गई कलमों या स्लिप में 2–3 कलमें होना चाहिए। कलमों को बनाने के बाद छाया में रखना चाहिए एवं सूखी पत्तियों को हटा देने से बीमारी फैलने की सम्भावना नहीं रहती हैं। नई प्रजातियाँ विकसित करने के लिए बीज से पौधे तैयार किये जाते हैं।

रोपण

सिंचाई की व्यवस्था रहने पर खस की रोपाई काफी जाड़े को छोड़ कर कभी भी की जा सकती है। उत्तरी भारत में जाड़ों में तापमान काफी गिर जाने के कारण पौधे/कलम सही ढ़ंग से स्थापित नहीं हो पाते हैं। जिन स्थानों में सिंचाई की सही व्यवस्था नहीं है, खस की रोपाई वर्षा ऋतु में की जाती है। अच्छी गुणों से युक्त मृदाओं में कलमों 60 x 60 से.मी. की दूरी पर एवं बेकार पड़ी एवं कमजोर मृदाओं में रोपाई 60 x 30 से.मी. पर करना उचित होता है।

खाद एवं उर्वरक

मध्यम एवं उच्च उर्वरायुक्त मृदाओं में सामान्यतः खस बिना खाद एवं उर्वरक के उगाया जाता है। कम उर्वरायुक्त जमीन में नेत्रजन, फॉसफोरस, पोटास का 60:25:25 की दर से व्यवहार करने से जड़ों की अच्छी ऊपज होती है। नेत्रजन का उपयोग खंडित कर करें। खस स्थापन के प्रथम वर्ष में नेत्रजन का उपयोग दो बराबर भाग में करें।

खरपतवार नियंत्रण

खस तीव्र गति से बढ़ने वाला पौधा है। इसलिए इस खरपतवार को बढ़ने का मौका कम मिलता है। किंतु ऐसे क्षेत्र जहाँ पर खरपतवारों की सघनता है। वहाँ पर फावड़े या वीडर का प्रयोग किया जा सकता है। फसल के पूर्ण विकसित होने पर खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहती है।

सिंचाई

खस की रोपाई के तत्काल बाद बेहतर पौध स्थापना हेतु सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। पौधे एक माह में पूर्णतः स्थापित हो जाते हैं, तब ये पौधे साधारणतः मरते नहीं हैं। जड़ों के बेहतर बढ़वार के लिए शुष्क मौसम में सिंचाई देना लाभकर होता है।

बीमारियाँ एवं कीट पतंग

खस बीमारी एवं कीट पतंगों के प्रति काफी सहनशील होते हैं। कभी कभी पत्तियों पर काले धब्बे कवक कर्वुलेरिया ट्राईफोलाई के कारण होता है किंतु हानि नहीं के बराबर होती है। शल्क कीट के प्रकोप पर मेटासिस्टोक्स 0.04 प्रतिशत का व्यवहार किया जाना चाहिए।

तनों की कटाई

सामान्यतः सिमवृद्धि को छोड़कर अन्य प्रभेद 18–20 माह में खुदाई योग्य हो जाती हैं। सिमवृद्धि 12 माह में खुदाई योग्य हो सकती है। रोपाई के प्रथम वर्ष में तनों की 30–40 से.मी ऊपर से पहली कटाई तथा खुदाई पूर्व एक कटाई अवश्य की जानी चाहिए। काटे गये ऊपरी भाग को चारे, ईंधन या झोपड़ियाँ बनाने के काम में लाया जाता है।

जड़ों की खुदाई

पूर्ण विकसित जड़ों को जाड़े के मौसम दिसम्बर–जनवरी माह में खुदाई किया जाना चाहिए। खुदाई के समय जमीन में हल्की नमी रहना आवश्यक है। खुदाई पश्चात् जड़ों से मिट्टी अलग होने के लिए खेत में दो–तीन दिन सूखने देना चाहिए। पूर्ण परिपक्व जड़ों से अच्छी गुणवत्ता के तेल प्राप्त होते हैं, जिसका विशिष्ट घनत्त्व एवं ऑप्टिकल रोटेशन ज्यादा होता है।आजकल जड़ों की खुदाई पर खर्च कम करने के लिए दो फारा कल्टिवेटर का व्यवहार हो रहा है। विशिष्ठ गुणवत्ता के खुदाई यंत्र सीमैप, लखनऊ में उपलब्ध हैं।

जड़ों का आसवन एवं एसेन्सियल तेल का उत्पादन

जड़ों से तेल निकालने में लगने वाला समय बिहार राज्य की स्थिति में 14–18 घंटा लगता है। इस आसवन के लिए क्लीभेंजर उपकरण के सिद्धान्त पर कोहोबेसन आसवन संयंत्र विकसित की गयी है, जिसके द्वारा खस की अच्छी प्रजाति के आधार पर 1 से 2 प्रतिशत तक एसेन्सियल तेल निकाला गया है। स्टेनलेस स्टील से बने आसवन संयंत्र द्वारा उच्च गुणवत्ता का तेल प्राप्त होता है।

विभिन्न प्रकार की जमीन में खस जड़ों का उत्पादन एवं तेल प्राप्ति :

भूमि का प्रकार	जड़ क्विंटल/हे०	तेल कि.ग्रा./हे०
उपजाऊ दोमट व बलुई दोमट	35–40	20–30
मध्यम उपजाऊ बलुई	25–30	15–25
बलुई	10–15	6–10
जलमग्न	9–10	4–8
लवणीय एवं समस्याग्रस्त	10–15	6–10

उन्नतशील किस्में के.एस.–1 में बिहार की स्थिति में 0.6 प्रतिशत से 1.00 प्रतिशत तक तेल उत्पादन की क्षमता है। सिमवृद्धि प्रजाति का दावा 2 प्रतिशत तक तेल पैदा करने का है, हालांकि जड़ों का उत्पादन कम होता है।

आय–वयय

(अ) लागत

कृषि क्रियाएँ	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष
मृदा तैयारी एवं आलेखन	2500.00	
कलम (स्लिप) बनाने की मजदूरी	1000.00	1000.00
खाद एवं उर्वरक	3000.00	1000.00
रोपाई	3000.00	
निराई एवं गुड़ाई	3000.00	
सिंचाई	3000.00	2000.00
तनों की कटाई	2000.00	2000.00
जड़ों की खुदाई	15000.00	
अन्य	2000.00	2000.00
योग	**19500.00**	**21000.00**
जड़ उत्पादन पर कुल खर्च	40500.00	
आसवन लागत (2500 किग्रा जड़)	10000.00	
तेल उत्पादन पर कुल खर्च	50500.00	

(ब) आय (1) जड़ों की बिक्री करने पर (2500 किग्रा जड़) दर रू० 40 / किग्रा 100000 कुल आय 24 महीनों में (रू० 100000–40500) 59500 कुल आय / हे०वर्ष

उपरोक्त विवरण अपने द्वारा उत्पादित खस से कलमें बनाकर खेती के आधार पर अनुमोदित हैं।

Conceptualized, Designed & Printed by:
Punam # 0 98350 59350

कृषि विभाग
बिहार सरकार

जनहित में प्रकाशित:

राष्ट्रीय औषधीय पादप मिशन

बैरक नम्बर–13, मुख्य सचिवालय, पटना–800 015 (बिहार)
फोन : 0612 – 2215 215, ईमेल : dir-bhds-bih@nic.in
वेबसाईट : www.horticulture.bih.nic.in